आचार्य चाणक्य

[ऐतिहासिक नाटक]

लेखक

जनार्दनराय नागर

एम. ए., साहित्यरत्न

प्रकाशक

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ

उदयपुर ।

मूल्य २॥)

प्रथम संस्करण । दो रुपया आठ आना ।

आचार्य चाणक्य

दो शब्द

स्कूल में पढ़ता था, तब से इच्छा थी कि आचार्य चाणक्य को लेकर नाटक लिखूं। भारतीय इतिहास की मतिमान विभूतियों में विष्णुगुप्त चाणक्य एक प्रमुख विभूति हैं। परन्तु जहाँ चाणक्य के शिष्य और कृति चन्द्रगुप्त मौर्य्य पर इतिहासकारों और नाटककारों ने अपनी लेखिनी को काफी कष्ट दिया है, वहाँ राजर्षि चाणक्य भुला से दिये गये हैं। कहना न होगा, इतिहास, राजनीति, सामाजिक-उथल-पुथल तथा अन्य अनेक दृष्टियों से चाणक्य स्वयं में एक दर्शन, एक गति, विधि और इतिहास हैं।

अतः यह नाटक "आचार्य चाणक्य।"

वर्षों के बाद सामाजिक, राजनैतिक बहुमुखी प्रवृत्तियों में व्यस्त और कातर रहने से संकोच और नम्रता के साथ, मैं अपनी यह कृति पाठकों के कर-कमलों में अर्पित कर रहा हूँ। क्योंकि मैं जानता हूं चन्द्रगुप्त पर नाटक लिखना जितना आसान है, उतना चाणक्य पर नहीं; और फिर प्रतिदिन के लौकिक सघर्षों तथा उतार-चढ़ावों में उद्वेलित होते हुए नाटक लिखना स्वयं में एक नाटक हो सकता है। परन्तु "आचार्य चाणक्य" को अपने मन की यह श्रद्धाञ्जलि देने के आतुर मोह का मैं संवरण न कर सका।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-संस्थान ने इसको प्रकाशित किया है। अतः मैं साहित्य-संस्थान, रा. वि. वि. के मंत्री श्री गिरिधारीलाल शर्मा, "साहित्यरत्न" का आभारी हूँ। सच तो यह है कि इस साथी की प्रेरणा और निरन्तर की 'पीछेलग' के बिना मैं यह नाटक पूरा कर ही नहीं सकता था।

—जनार्दनराय

प्रकाशकीय निवेदन

साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ के अन्तर्गत स्थापित 'नव साहित्य सृजन विभाग' द्वारा प्रस्तुत नाटक का प्रकाशन किया जा रहा है। 'साहित्य-संस्थान' एक ओर प्राचीन हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की शोध-खोज, संग्रह-सम्पादन एवं प्रकाशन का कार्य कर रहा है तो दूसरी ओर आधुनिक हिन्दी साहित्य के सृजन एव प्रकाशन की योजना भी कार्यान्वित करता है। प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना का अंग है। 'आचाय चाणक्य' के प्रणेता श्री पं० जनार्दनराय नागर प्रसिद्ध नाटककार और लेखक हैं। आपके अब तक दो नाटक 'आधी रात एवं पतित का स्वर्ग' प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत तीसरा नाटक ऐतिहासिक कथा वस्तु पर आधारित है। आधुनिक नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक कैसा बन पड़ा है, इसका निर्णय विद्वान समालोचकों के करने का है। हम यहाँ सिर्फ इतना ही कहना चाहते हैं कि 'राष्ट्रीयता की उच्च एवं उदात्त भावना का उत्कृष्ट परिचय पुस्तक में सर्वत्र मिलेगा।'

प्रस्तुत नाटक की भूमिका प्रसिद्ध विद्वान और साहित्यकार श्री हरिभाऊजी उपाध्याय ने अति कार्य व्यस्त होते हुए भी लिखने का कष्ट किया, इसके लिए संस्थान की ओर से हम आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

छपाई और सफाई की दृष्टि से पुस्तक जैसी चाहिये थी वैसी नहीं बन सकी है, इसका हमें सख्त अफसोस है। प्रूफ की कुछ भयंकर गलतियाँ भी रह गई हैं। आगामी संस्करण

में हम इन सबका निराकरण करने का प्रयत्न करेंगे। यहाँ तो पाठकों से क्षमा याचना के अतिरिक्त कर ही क्या सकते हैं?

गिरिधारी लाल शर्मा

अध्यक्ष

प्रताप जयन्ति १४ जून १९५३ साहित्य-संस्थान

भूमिका

"आचार्य चाणक्य" ऐतिहासिक नाटक है। उसके सभी पात्र इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं और सभी घटनायें इतिहास सम्मत। इतिहास बताता है कि सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व पंजाब तथा सीमान्त प्रदेश में अनेक छोटे २ तथा स्वतन्त्र राज्य थे। दुर्भाग्य से वे सब आपस में लड़ते झगड़ते रहते थे। उनमें एकता और संगठन का अभाव था। सभी अपने को वीर और शक्तिशाली मानते थे। जब सिकन्दर का आक्रमण हुआ तब आपस की इस फूट ने उसे बड़ा बल पहुंचाया। गांधार नरेश आम्भीक सिकन्दर से मिल गया। पौरव पर्वतेश्वर ने बड़ी वीरता से सिकन्दर का सामना किया लेकिन वह पराजित हो गया, पर्वतेश्वर की वीरता से सिकन्दर बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उससे मित्रता करने में गौरव समझा।

तक्षशिला इन दिनों विद्या और ज्ञान का केन्द्र था। विष्णुगुप्त चाणक्य इसी विश्व विद्यालय के आचार्य थे। जब संसार की एक शक्तिशाली जाति के आक्रमण से भारत का अस्तित्व खतरे में पड़ता हुआ दिखाई दे रहा था तब विश्व विद्यालय के जागरूक आचार्य और छात्र चुप चाप कैसे रह सकते थे। उन्होंने भारतीयता तथा एकता का नारा बुलन्द किया और सिकन्दर के विरुद्ध एक दृढ़ संगठित मोर्चा खड़ा करने का कार्य

प्रारम्भ कर दिया। यह एक बड़ा और कठिन कार्य था। आचार्य इसी सिलसिले में मगध गये लेकिन वहाँ तो विलासिता का राज्य था। मगध के सम्राट कामिनी और कांचन की माया में खो चुके थे। आचार्य अपमानित हुए। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस अत्याचारी और विलासी राजा का अन्त नहीं होता, मैं अपनी शिखा नहीं बाधूँगा। आचार्य के सामने सचमुच बड़ा कठिन कार्य था। लेकिन उन्होंने अपनी बुद्धिमता, नीतिज्ञता और कौशल से सिकन्दर को लौट जाने के लिए विवश कर दिया।

सिकन्दर को बिदा करके आचार्य ने मगध की ओर ध्यान दिया और वहाँ के राजा नन्द को मिटा कर अपने शिष्य चन्द्रगुप्त को वहाँ का शासक बनाया। आचार्य ने शासन प्रबन्ध में भी बड़ी दिलचस्पी ली। लेकिन जब चन्द्रगुप्त को यह अनुभव होने लगा कि वह तो आचार्य के हाथों का खिलौना है तो वे उसी क्षण चल देते हैं। देश की एकता की रक्षा और जन साधारण का हित साधन ही उनका एक मात्र लक्ष्य रहा। उसी के लिए जीवन भर प्रयत्न करते रहे और जब देखा कि यह कार्य हो गया है और राजा उनके कार्य को ठीक नहीं समझते तब अनासक्त भावना से आत्म कल्याण के लिए चल देते हैं।

विद्वान लेखक ने इस नाटक की कथावस्तु का संगठन इतनी कुशलता से किया है कि लचरपन और शिथिलता के लिए स्थान नहीं रहा है। चरित्र चित्रण बड़ा सुन्दर है। देश-प्रेम

की उच्च और उदात्त भावनायें अपना जबरदस्त असर डाले बिना नहीं रहतीं। बुद्धिपक्ष और कलापक्ष दोनों का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। इसी काल के ऐतिहासिक आधार को लेकर सन् १९३१ में प्रसादजी का 'चन्द्रगुप्त' नाटक प्रकाशित हुआ था। उस नाटक की अपनी विशेषतायें हैं जिसके कारण वह हिन्दी संसार में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। लेकिन उसमें जहाँ चन्द्रगुप्त नायक के रूप में हमारे सामने आता है वहाँ प्रस्तुत नाटक में आचार्य चाणक्य ही हमें सारे सूत्रों का संचालन करते हुए दिखाई देते हैं। मेरी दृष्टि में लेखक ने ऐसा करके उचित ही किया है। चन्द्रगुप्त की वीरता और देश प्रेम में सन्देह नहीं किया जा सकता। लेकिन इस महान् काम के लिए जिस कूटनीति, बुद्धिमता और त्याग की आवश्यकता होती है उसकी अपेक्षा आचार्य चाणक्य से ही की जा सकती है। प्रसादजी जैसी ही मजी हुई भाषा, सार-गर्भित वाक्य और प्रभावोत्पादकता ने नाटक को उत्कृष्ट बना दिया है! "चन्द्रगुप्त और आचार्य चाणक्य" में कौन श्रेष्ठ है, इसका निर्णय करना तो विद्वान समालोचकों का कार्य है। लेकिन मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि यह नाटक विद्वानों द्वारा पसन्द किया जायगा और यह सिद्ध कर देगा कि इस नाटक के लेखक श्री जनार्दनरायजी नागर एक कुशल नाटककार हैं और उनकी गणना हिन्दी के अच्छे नाटककारों में होनी चाहिये।

गांधी आश्रम
हटूण्डी-अजमेर
३०-५-५३

हरिभाऊ उपाध्याय

आचार्य चाणक्य

प्रथमाङ्क

दृश्य—पहला

[तक्षशिला विद्यापीठ के विशाल उद्यान का एक एकान्त भाग। समय, संध्या काल होने में है। विष्णुगुप्त चाणक्य का विचार-मग्न प्रवेश।]

विष्णुगुप्त चाणक्य— (रुक कर, सहसा) — **कौन है ?** (चारों ओर देख कर) **कोई नहीं। मैं हूँ और नीरवता है।** (निसास रख कर, सुदूर क्षितिज की ओर देखता हुआ खड़ा रहता है।)

[वररुचि का प्रवेश।]

वररुचि—(देख कर)— **कौन ? सुहृदय विष्णुगुप्त हैं क्या ? शुभ।** (पास आकर) **किस चिन्तन में खड़े हो, चाणक्य ? क्षितिज पर किसे खोज रहे हो ?**

विष्णुगुप्त चाणक्य— (उसी तरह क्षितिज की ओर देखता हुआ, अविचल)—स्वयं को।

वररुचि—(हँस कर)—समझ गया। कात्यायन, तुम सदैव गहन चिन्ता में लीन रहते हो। जब कभी मैं तुमको देखता हूँ, किसी ऐहिक चिन्ता में लीन पाता हूँ। समझ में नहीं आता, ऐसी कौनसी गम्भीर चिन्ता आ पड़ी है, तुम्हारे जीवन में, जो तुम गम्भीर विषाद में डूबे रहते हो ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(उसी तरह) वररुचि !

वररुचि—(उत्साहित सा)— हां, और क्या ? अभी-अभी गुरु-दक्षिणा के ऋण-परिशोध के उपलक्ष्य में बड़ी श्रेणियों को अर्थ-शास्त्र की शिक्षा देने लगे हो। अर्थ-शास्त्र और काम-शास्त्र के तुम्हारे अगाध ज्ञान से प्रसन्न होकर कुलपतिजी ने तुमको आचार्य-पदवी प्रदान की है। निस्संदेह, मित्र ! तुम्हारा पथ प्रशस्त है !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(स्वगत-सा)— निस्संदेह अपना पथ प्रशस्त है। (सहसा घूम कर भार और दृढ़ता के साथ) नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता।

वररुचि—(साश्चर्य, हठात्)—क्या नहीं हो सकता ?

विष्णुगुप्त चाणक्य— तुम देख नहीं रहे हो, वररुचि! क्या हो रहा है ?

वररुचि—क्या हो रहा है ? कुछ भी तो नहीं ? अपना यह विख्यात विशाल विद्यापीठ यथापूर्व है। और अब तो इस

महान् गुरुकुल का भविष्य और भी अच्छा है। अपने स्नातक महाराज आम्भीक इसकी उन्नति के लिये सब कुछ करेंगे, ऐसा कुलपतिजी का विश्वास है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(स्वगत-सा)-महाराज आम्भीक! तुम कहे जाओ, वररुचि! शब्दों का जीवन देखने वाले जातियों का जीवन देख नहीं सकते।

वररुचि—समझ गया। गान्धार पर यवन-आक्रमण की आशंका से कदाचित तुम भयभीत हो उठे हो, चाणक्य! किन्तु इसमें चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं। आर्यावर्त के अविराम जीवन-प्रवाह में ऐसे उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। यूनान का यह चढ़ाव भी यदि आयगा, तो आयगा।

विष्णुगुप्त चाणक्य—जिस दिन मेसेडोनिया के राजा फिलिप ने समस्त यूनान पर अधिकार कर लिया, उस दिन से मैं देख गया था कि एक दिन यूनान की तलवार को चमक ब्रह्माण्ड में पड़ेगी।

वररुचि—क्या पहेली बुझा रहे हो, चाणक्य? कहाँ यूनान और कहाँ आर्यावर्त?

विष्णुगुप्त चाणक्य—वररुचि! मैं पहेलियाँ बुझा नहीं रहा। मैं विधि के लेख पढने की चेष्टा में हूँ। तुम्हारे आने के पूर्व क्षितिज के उस पार मैं देख रहा था कि यवन सम्राट अलक्षेन्द्र की काली छाया ब्रह्माण्ड से कितनी दूर रह गई है।

वररुचि—क्या कह रहे हो, कात्यायन!

विष्णुगुप्त चाणक्य—समझना चाहते हो, वैयाकरणिक ? (सस्मित) तो समझो। राजा फिलिप की मृत्यु के बाद उसके दुर्धर्ष महत्वाकांक्षी पुत्र राजा अलक्षेन्द्र ने वायुवेग से सीरिया, मिस्र, बेबिलोन और ईरान को पछाड़ कर अपने वश में कर लिया है और अब हिन्दुकुश के गढ-राज्यों पर उसका प्रचण्ड पादाघात हो रहा है—समझे अब ?

वररुचि—समझ गया ? किन्तु क्या आर्यावर्त पर आक्रमण करने का दुस्साहस यवन-सम्राट करेगा ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—इसका उत्तर अपने महाराज आम्भीक से माँगो, वररुचि !

वररुचि—समझ गया। होगा, वह सामने आयगा। यवन-सम्राट ने आर्यावर्त पर आक्रमण करने का दुस्साहस कर भी दिया, तो हम उपाध्याय कर ही क्या सकते हैं ? शस्त्र-चर्चा और रण-चर्चा हम ब्राह्मणों का धर्म नहीं। महाराज आम्भीक हैं, राजेश्वर पर्वतेश्वर हैं, मगध-सम्राट महाराज नन्द हैं, गण-प्रमुख और गण-मुख्य हैं—देख लेंगे। तुम इन लौकिक समस्याओं और घटना-चक्रों में आसक्त क्यों हो रहे हो, चाणक्य ? अपनी सिद्ध अगाध विद्या को इन ऐहिक ज्वालाओं में भस्म क्यों कर रहे हो, ब्राह्मण ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—लौकिक जीवन की ज्वालाओं में तप कर ही ब्राह्मण की सिद्ध विद्या सफल होती है, और वररुचि ! समय आने पर सब धर्म ब्राह्मण के धर्म हो जाते हैं। यह न भूलो, वैयाकरणिक ! कि ब्राह्मण ही जाति को शिक्षा देता है

और देशकालाऽनुसार नई जाति का निर्माण भी ब्राह्मण ही करता है। चलो, अग्नि-होत्र का समय हो चला।

वररुचि—तुम भी विचित्र हो, चाणक्य!

विष्णुगुप्त चाणक्य—(गम्भीर, किन्तु सस्मित)—मैं क्या हूँ, मुझे पता नहीं। (क्षमतापूर्ण ओज के साथ) एक अखण्ड और शक्तिशाली भारतवर्ष का बाँध जम्बुद्वीप को कम्पाने वाली इस प्रबल यवन-वाहिनी की बाढ़ को रोकेगा, वररुचि! निस्संदेह! चलो— (विष्णुगुप्त चाणक्य का धीरे २ पर अविचल भाव से प्रस्थान। पीछे २ वररुचि भी जाता है।)

दृश्य—दूसरा

[समिधा लेने के लिये जाते हुए तक्षशिला विद्यापीठ के कुछ ब्रह्मचारियों का प्रवेश।]

सिंहरण—(रुक कर)— चन्द्रगुप्त! आश्चर्य चाणक्य ने आज जो कुछ कहा, उस पर विचार कर मैं चिन्तित हो उठा हूँ।

चन्द्रगुप्त मौर्य— (खड़ा रह कर) — सिंहरण! मैं भी तब से यही विचार कर रहा हूँ कि आर्यावर्त का क्या होगा? यवन-सम्राट हिन्दुकुश के गढ़-राज्यों को पराजित कर कहीं गान्धार पर आ न टूटे।

सिंहरण—निश्चय ही वह बर्बर और दुस्साहसी यवन-नरेश गान्धार की ओर बढ़ेगा। क्या किया जाय? (सरोष) पश्चिमोत्तर आर्यावर्त के जनपद और राज्य आज इतने निर्बल

न कर दिये होते, तो यह चिन्ता हमें खाये न डालती। ब्रह्माण्ड-तट से दूर ही हम यवन-तलवार के टुकड़े कर डालते।

चन्द्रगुप्त मौर्य—अतीत पर अपना वश नहीं, भविष्य पर है। आज कटु सत्य यह है कि अपने ये राज्य और जनपद अशक्त, और आपस के राग-द्वेष से जर्जर हो गये हैं। अपने संथागारों में ये व्यर्थ ही कोलाहल किया करते हैं। अभिमान में डूबे हुए और व्यावहारिक राजनीतिक ज्ञान से शून्य ये राज्यों और गणोंके घेरे यवनों के पादाघात मात्र से कहीं धराशायी न हो जायें, सिंहरण !

सिंहरण—इस महापाप का दोष किसके सिर पर है, चन्द्रगुप्त ! तुम्हारे मगध-सम्राटों पर, समझे ? कोसल, अवन्ती और वत्स जैसे समर्थ राज्यों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर मगध-सम्राटों ने अपनी राज्य लिप्सा पूरी की। अजात शत्रु, जैसे मगध-सम्राट ने भगवान तथागत के उपदेशों की अवज्ञा करके आठ-आठ गणतन्त्रों के समूह वज्जी-संघ को अपने साम्राज्य के मनोरथ के भालों, भेदों और कूटनीति की तलवार से काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। आज आचार्य हमें कह रहे हैं कि एक और शक्तिशाली भारतवर्ष की रचना करते हुए इस दुर्धर्ष यवन-आक्रमण को हमें विफल करना होगा—अकेला मालव क्या कर लेगा ?

चन्द्रगुप्त मौर्य—इसके सिवाय और क्या चारा है, मालव ?

सिंहरण— यों क्यों नहीं कहते, चन्द्रगुप्त! कि मगध-साम्राज्य का विस्तार करके महापद्म के उस जारज पुत्र महाराज नन्द को आर्यावर्त्त का सम्राट बनाना होगा ?

१ ब्रह्मचारी—सत्य, सर्वथा सत्य—विशुद्ध सत्य ! (हँसता है ।)

सिंहरण—(उत्तेजित)—क्या विशुद्ध सत्य ? हम जनपदीय थे, हैं, और रहेंगे । मालव नष्ट हो जायगा, किन्तु अपनी सनातन स्वतन्त्रता पर किसी की छाया पड़ने न देगा । यह है विशुद्ध सत्य, सुन लेना ।

२ ब्रह्मचारी—हाँ, हाँ; सुन लिया । और यों भी कहो न कि पञ्चनद की स्वतन्त्रता की भी मालव प्राणार्पण करके रक्षा करेगा । महाराज पौरव की सुकन्या रजनीगन्धा देवी के स्वदेश की स्वतन्त्रता मालव सिंहरण कैसे कलंकित होने देंगे ? नहीं ।

३ ब्रह्मचारी—मैं दूंगा मालव का साथ । भला यह भी कोई बात है ? (हँस कर) शरदोत्सव में नयन मिले; मन बज उठे—और पुष्पधन्वा के तीर गहरे-गहरे दोनों के हृदयों में घुस गये ! (सब हँसते हैं ।)

सिंहरण—हँसो ! तुम लोगों को और काम क्या है ? ताड़-पत्रों का संचय करना, वेदी लीपना, उपवस्त्रों को धोना, प्रासाद को चुरा कर खा जाना—खर्राटे भरना और हँसी उड़ाना—

४ ब्रह्मचारी—अरे वाहरे, मालव राजकुमार! ऐसा ही

न्याय क्या मालव संथागार में होता है, भला ? अरे हम तो गुरु-कृपा रूप प्रसाद को चुरा कर ही खा जाते हैं; परन्तु श्रीमान ने तो सुकुमारी मन-मोहिनी, हंस-गामिनी उस सरस सुन्दरी के हृदय को चुरा कर नयनों में रख लिया है—

५ ब्रह्मचारी—और घायल हम हो गये हैं, हाँ !

(पुनः सब हँसते हैं ।)

सिंहरण—मैंने तुम लोगों से कितनी बार कहा कि सु श्री रजनीगन्धा देवी को लेकर मेरी हँसी मत उड़ाया करो, किन्तु—

६ ब्रह्मचारी—किन्तु, परन्तु; परन्तु-किन्तु हम नहीं मानते, यही न ?

७ ब्रह्मचारी—तुम लोगों ने मालव को क्या एकाकी, निस्सहाय मान रक्खा है ? शिव, शिव ! यह अत्याचार ? हम मालव का त्राण करेंगे । मैं पूछता हूँ, यदि मालव सिंहरण पञ्चनद-राजकुमारी से प्रेम करते हैं, तो तुम शठों को ईर्षा क्यों होती है ? हम तो परम प्रसन्न होते हैं, दूसरों के सुख को देख कर; प्राणिमात्र आर्तनाशनम् !

१ ब्रह्मचारी—स्वीकार है । तब सुहृदय सिंहरण ! आचार्य चाणक्य के काम-शास्त्र का अभी से पारायण आरम्भ कर दो; जिससे सु श्री रजनीगन्धा देवी के स्वयंवर में तुम विश्व-विजयी होकर अवतरित हो सको । हमारे आशीर्वाद !

८ ब्रह्मचारी—तुम सब समावर्तन के अयोग्य हो, निश्चय सम्भूत अयोग्य ! हाँ, मालव ? आज आचार्य ने क्या कहा था ?

२ ब्रह्मचारी—कि तुम अपनी केतु जैसी शिखा में मालव

सिंहरण की प्रेम-पाती बाँध कर पञ्चनद पति के पास जाओ और उनसे सु श्री रजनीगन्धा देवी के लग्न माँग लाओ। तंग आ गये, इस राजनैतिक वार्ता से। जब देखो, जहाँ देखो, बस यही बात—संघाराम में, श्रेणी में, यज्ञ-स्थली में, फुलवारी में, शस्त्रागार में, नदी-तट पर, सर्वत्र, बस यही बात कि आचार्य ने यह कहा, आचार्य ने वह कहा—

चन्द्रगुप्त मौर्य—(बीच में जैसे)—तुम ठहरे कठई वैश्य। कठ-गणतन्त्र का कोई क्षत्रिय होता, तो वह न कहता यह बात।

३ ब्रह्मचारी—अच्छा, मागध! मैं तो क्षुद्रक क्षत्रिय हूँ। मैं कहता हूँ यह बात।

४ ब्रह्मचारी—यवन-नृपति आ गया तो आ जायगा—देख लेंगे। मैं मान्य लिच्छिवि हूँ, मैं कहता हूँ यह।

५ ब्रह्मचारी—हाँ, हाँ, बिगड़ो मत, मागध! आचार्य जैसा कहेंगे, वैसा ही हम करेंगे, किन्तु एक बात न करेंगे।

६ ब्रह्मचारी—वह कौन सी 'ज, ब, ग, ड, द, श' जैसी बात है, हम भी तो सुनें?

५ ब्रह्मचारी—सीधी सी बात है, सरल सी प्रतिज्ञा है कि मागध चन्द्रगुप्त चाहें कि यवन-आक्रमण का लाभ लेकर मगध साम्राज्य का विस्तार करलें, तो यह। असंभवं हेम मृगस्य जन्मम्!

७ ब्रह्मचारी—अरे वाहरे पिप्पली कानन के वृषल! क्या छद्मलक्ष्य-वेध है। मान गये!

चन्द्रगुप्त मौर्य—(सहसा)—क्या कहा? वृषल—मैं वृषल?

ठहर, ढीठ, कहीं के! तेरी जिव्हा जड़ से खींच लूं-(लपकता है।)

सिंहरण—(सहसा देखकर)—हाँ, हाँ, चन्द्रगुप्त ? क्या कर रहे हो ? आचार्य ! आचार्य इधर ही आ रहे हैं।

(चन्द्रगुप्त ठिठक कर खड़ा रहता है। आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(क्रोध और अमर्ष से)—क्या मैं वृषल् हूं, आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—मैं, मैं वृषल्! नहीं, आचार्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—वत्स चन्द्रगुप्त ! पिप्पली कानन के तुम लोग क्षात्र-धर्म-कर्म से हीन होकर सदियों से वृषल् हो गये हो। (सस्मित) किन्तु वृषल क्षत्रिय हो सकते हैं और क्षत्रिय वृषल।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(स्वगत-सा)—वृषल् क्षत्रिय हो सकते हैं?

विष्णुगुप्त चाणक्य—उत्साह पूर्वक किये गये पुरुषार्थ से विधि भी बदली जा सकती है। चिन्ता न करो, वत्स ! उठो और आर्यावर्त की ओर देखो। दिन आ रहा है, जब प्रत्येक वृषल को क्षत्रिय और प्रत्येक क्षत्रिय को वीर सैनिक होना होगा।

चन्द्रगुप्त मौर्य—आचार्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(गम्भीर, पर अविचल भाव से)—उद्भाण्ड के तट पर मैं यवन-दस्युओं की घुड़टापें सुन रहा हूँ और महाराज आम्भीक को गान्धार की अर्गला खोल कर यवन-सम्राट के स्वागत के लिये आतुर खड़ा हुआ देख रहा हूं, चन्द्रगुप्त !

सिंहरण—तब क्या होगा, गुरुदेव ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—कुछ न होगा।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—कुछ न होगा ? नहीं। महाराज आम्भीक यवनों का स्वागत कर गान्धार की स्वतन्त्रता खो देंगे ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ।

सिंहरण—तब क्या सिन्धु पार कर यवन पञ्चनद पर भी टूट पड़ेंगे ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ।

१ ब्रह्मचारी—तब समस्त आर्यावर्त का क्या होगा, गुरुदेव ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—अलग-अलग, एक-एक तिनके के समान टूट जायगा।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—टूट जायगा यह आर्यावर्त, आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—अवश्य टूट जायगा। इस आर्यावर्त को टूटना ही चाहिये।

सिंहरण—यह आप कह रहे हैं, आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हां, यह मैं कह रहा हूँ।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। अपना यह आर्यावर्त कभी टूट नहीं सकता। यह अखण्ड है—अपराजित है, गुरुदेव !

सिंहरण—जब तक सिन्धु और गंगा की अजस्त्र धारायें बहती हैं, हमारा यह आर्यावर्त भी अजर है। इसे कोई तोड़ नहीं सकता।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(म्लान हँस कर)—सिंहरण ! तुम मालव हो, चन्द्रगुप्त तुम मागध हो। यह कठ है, वह लिच्छिवि है, वह क्षुद्रक है। अखण्ड और अपराजित आर्यावर्त है कहाँ ? (सिर हिला कर) है नहीं, हो सकता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—हो सकता है ? तब गुरुदेव! आप हमारा मार्ग-दर्शन करें। हम प्रतिश्रुत होते हैं, अभी—इसी समय !

सिंहरण—आशीर्वाद दीजिये, आचार्य ! कि अपना यह विशाल राष्ट्र कभी किसी से भी पराभूत न हो।

विष्णुगुप्त चाणक्य—तथास्तु ! गान्धार से आरम्भ करो और समस्त आर्यावर्त में अटूट मेखला डाल दो।

१ ब्रह्मचारी—हम तक्षशिला के ब्रह्मचारी हैं। हम आपका यह सन्देश अपने २ गणतन्त्रों में फैला देंगे।

सिंहरण—आचार्य ! आपके मार्ग-दर्शन में हम सिन्धु और झेलम, रावी और व्यास की धाराओं को एक महासागर की ओर मोड़ देंगे।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—पिप्पली कानन का प्रत्येक वृषल सन्नद्ध क्षत्रिय बनेगा और यवन, समुद्र में ढ़केल दिये जायेंगे। हमारे ये खड्ग, जो विद्यापीठ की भूमि में चमकते हैं, अब अटक से लेकर पाटली पुत्र तक चमकेंगे। आचार्य—चरण का स्पर्श कर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि आर्यावर्त के लिये हम अपने प्राण दे देंगे। मित्रों ! आचार्य की जय कहो और चलो।

दो-तीन ब्रह्मचारी--आचार्य की जय! चलो—

विष्णुगुप्त चाणक्य—अपने आचार्य की नहीं, आर्यावर्त की जय कहो। पुत्रों! चलो-- (धीरे २ प्रस्थान करता है। साथ में चन्द्रगुप्त, सिंहरण और अन्य ब्रह्मचारी भी जाते हैं।)

दृश्य—तीसरा

[उद्भाण्ड तट का एक एकान्त भाग। महाराज आम्भीक, प्रधानामात्य, सेनापति और तीन गुल्माध्यक्षों का सावधानी के साथ प्रवेश।]

प्रधानामात्य—यहीं, महाराज, यहीं श्रीमान की यवन-सम्राट प्रतापी अलक्षेन्द्र से भेंट होगी। यहीं राजेश्वर का मनोरथ सिद्ध होगा।

महाराज आम्भीक—अवश्य होगा। आपने उत्तम कार्य किया है, हम अत्यन्त प्रसन्न हैं। हम यहाँ निश्चय ही प्रतापी यवन-सम्राट से भेंट करेंगे। अब तुम से समझ लूंगा, पर्वतेश्वर! सँभलना अब, अहँकारी!

सेनापति—अब वह क्या सँभलेगा, महिमन्! उसे क्या पता, कि गान्धार और यवन-सेनायें पञ्चनद को फूँक में उड़ाने वाली हैं।

महाराज आम्भीक—हम से अपनी पुत्री का पाणिग्रहण अब भी न करोगे, पर्वतेश्वर? मत करो। वह दिन आ रहा है, जब तुमको भारी-भारी लोह-शृंखलाओं में जकड़ कर अपनी मातेश्वरी के चरणों में झुकाऊँगा। तुम्हारा लम्बा नाक

इन चरणों पर रगड़ तुम्हारी उस मन-मोहक कन्या रजनीगन्धा को अपनी दासी बनाऊँगा। (अट्टहास्य) क्यों, ठीक है, न अमात्यजी ?

प्रधानामात्य—श्रीमान मान्यवर महाराज श्री मुख से सदैव उचित कहते हैं। क्या इसमें सूर्य को भी शँका है, सेनापतिजी ?

सेनापति—नहीं, सौ बार नहीं। महिमन् अभी आज्ञा करदें और अभी इसी समय पञ्चनद की राजकन्या तो क्या स्वर्ग की उर्वशी को पकड़ कर यहाँ उपस्थित कर दूँ।

महाराज आम्भीक—साधु ! हम आप पर परम प्रसन्न हुए। आपको तीन गाँव इसी समय हमारी ओर से भेंट हुए। एक दिन हम रजनी गन्धा देवी को अवश्य अपनी दासी बनायेंगे।

सेनापति—सेवक कृतार्थ हुआ। आज्ञा हो तो यह दास इन श्री चरणों में अपना यह मस्तक काट कर रख दे। (झुककर अभिवादन करता है।)

महाराज आम्भीक—हम परम सन्तुष्ठ हुए। (दूर उड़ती हुई धूल देखकर) वह कौन ? यवन सम्राट क्या ? निश्चय ही वे ही प्रतीत होते हैं।

१ गुल्माध्यक्ष—(ध्यान से देखकर)—शीघ्रगामी अश्वों की धूल से मार्ग ढँक गया है। फिर भी दावे से कहता हूँ, वे यवन-सम्राट ही हैं। इधर ही पधार रहे हैं। दास एक योजन तक देख लेता है, परम माननीय ! (नमन करता है)

२ गुल्माध्यक्ष—(देखकर)—वही हैं, वही, महाराज—

महाराज आम्भीक—(दर्प से)—आज हमारे पास प्रतापी, दिग्विजयी, यवन सम्राट अलक्षेन्द्र स्वयं आरहे हैं। हम कितने भाग्यशाली हैं ?

प्रधानामात्य—राजेश्वर महाराज की योग्य राजनीति का यही सुयोग है।

सेनापति—शक्ति और बुद्धि का योग इसे कहते हैं।

महाराज आम्भीक—अभी क्या है ? यह तो आरम्भ मात्र है। अपनी इस कुशल नीति से हम समस्त पश्चिमोत्तर आर्यावर्त को अपने इन चरणों में बिछा देंगे। विशाल गान्धार का निर्माण कर प्रत्येक पराजित राज्य और जनपद की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी राजकन्या से हम विवाह करेंगे; यही हमारा परम मनोरथ है। देखे जाइये, हमारी इस अजय सूक्ष्म नीति के क्या-क्या सुफल होते जाते हैं।

(यवन दूत का त्वरा से कुछ यवन सैनिकों के साथ प्रवेश)

यवनदूत—यूनान की जय हो ! जय ! राजराजेश्वर महाराजाधिराज निकाडोर एलेक्जेण्डर की जय ! (सैनिक अभिवादन करता है।)

सेनापति—(उत्तर में सैनिक अभिवादन करता हुआ)—जय ! गान्धार-नृपति महाराज आँभीकदेव की जय !

महाराज आम्भीक—दूत ! हम सम्राट् महाराजाधिराज अलक्षेन्द्र की प्रतीक्षा में यहाँ उपस्थित हैं।

यवन दूत—यहाँ से थोड़ी ही दूर पर, उद्भाण्ड के उस मोड़ पर महाराजाधिराज राजराजेश्वर निकाडोर एलेक्ज़ेण्डर विश्राम कर रहे हैं। उन परम पराक्रमी श्रीमान ने आप गान्धार-नरेश को आदर के साथ याद किया है।

महाराज आम्भीक—अच्छा ? (हर्ष से) हमें याद किया है—आदर के साथ सम्राट ने हमें याद किया है ? धन्य ! चलो, शीघ्रता पूर्वक चलो। हम सत्वर सम्राट के सम्मुख होना चाहते हैं। दूत, हमें मार्ग दिखाओ। (प्रधानामात्य से) यह क्या कोई कम बात है कि विश्व विजेता यवन सम्राट ने हमें आदर के साथ याद किया है, अमात्यजी ?

प्रधानामात्य—धन्य हैं आप श्रीमान और धन्य हैं; वीरों के गुणग्राही यवन सम्राट् अलक्षेन्द्र देव ! पधारिये, उधर से, गान्धार के सफल मनोरथ का मार्ग यही है—

(आगे २ यवन दूत, पीछे २ आम्भीक तथा अन्य जाते हैं)

दृश्य—चौथा

[तक्षशिला का राजमार्ग। मालवसिंहरण का साथी ब्रह्मचारियों के साथ गाते हुए प्रवेश। साथ मे नागरिकों का एक बड़ा झुण्ड है]

सिंहरण—(खड़ा रह कर)- एक देश है भारत अपना, जीवन मरण सहारा अपना। (ब्रह्मचारियों के साथ दुहरा कर गाता है) कोई नहीं पर देश यहां पर, एक ज्योति, संस्कृति यहाँ

पर, ज्योति २ का वैभव अपना।

१ ब्रह्मचारी—(गाते हुए)-मागध, मालव, कठ, लिच्छवि, पञ्चनदी, गान्धार-निवासी; जन-जन का संजीवन अपना! (सब) एक देश है भारत अपना।

२ ब्रह्मचारी—(गाते हुए)-गंगा, यमुना, सिन्धु-सरस्वती; व्यास, शोण, रावी नित बहती; पोषण करती निशिदिन अपना—

सिंहरण—'एक देश है भारत अपना, जीवन मरण सहारा अपना'।

३ ब्रह्मचारी—उठो, उठो गान्धार-निवासी! ओ झेलम तट के अधिवासी! देश घिरा संकट से अपना।

सिंहरण—देश घिरा संकट से अपना।

१ नागरिक—(ज़ोर से)-मालव-सिंहरण, सुनिये! आप किस संकट की बात कह रहे हैं?

२ नागरिक—(आगे आकर)-कुछ कहेंगे भी? आज दिवसों से यह मर्म-स्पर्शी गीत गाते हुए आप सब यों क्यों घूम रहे हैं?

३ नागरिक—कुछ कहते क्यों नहीं? यों गाते हुए घूम रहे हो। कौनसा संकट है फिर वह?

४ नागरिक—हाँ, जो मँडरा रहा है और आपको यों चिन्तित कर रहा है। हम भी तो जानें।

५ नागरिक—अरे, और क्या होगा? जब से महाराज आम्भीक देव छत्र-सिंहासन-पति हुए हैं, तभी से हम समझ गये थे कि अब संकटों से पाला पड़ा है।

६ नागरिक—सच कहा। स्वार्थी और चाटुकार गान्धार

का नाश कर अपना वैभव बटोरने में लगे हुए हैं। क्या हम यह नहीं जानते ?

७ नागरिक—पर किससे कहें ? कहाँ जायँ ? अब तो मरें या मारें तो है।

८ नागरिक—यूनान से गान्धार की जो मित्र-सन्धि उद्भाण्ड तट पर हो रही है, उसके बारे में आप कुछ कह रहे हैं क्या, मालव ?

९ नागरिक—उसके बारे में क्या कहना है फिर ? महाराज सहित राज-परिषद् ने तो विज्ञप्त किया है कि यह यूनान और गान्धार की समान आदर और गौरव की मित्र-सन्धि हो रही है।

१० नागरिक—हाँ, और क्या ? उद्भाण्ड तक आते ही यवन सम्राट के छक्के छूट गये ! तभी तो वह महाराज से हाथ मिला रहा है।

सिंहरण—भले गान्धार वासियो ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? भ्रांति इतनी सुनहरी हो सकती है, मिथ्या इतनी वास्तविक लग सकती है, इसका आज पता चला। (तन कर) गान्धार की सौगन्ध ! उद्भाण्ड तट पर गान्धार ही नहीं समस्त आर्यावर्त की पराधीनता के लेख लिखे जा रहे हैं और आप यह कह रहे हैं ? (और अधिक ओज से) बर्बर और प्रबल यवन-सैनिकों की लोहानी एड़ियों और घातक कृपाणों के लिये गान्धार और पंचनद के आबालवृद्धों के कलेजे नंगे किये जा रहे हैं और आप यह कह रहे हैं ? सिन्धु और झेलम की पावन लहरों के लिये

आर्यावर्त के पुत्रों और पुत्रियों का लहू एकत्र किया जा रहा है, और आप यह कह रहे हैं ? आश्चर्य और शोक !

१ नागरिक--मालव ?

२ नागरिक--यह आप क्या कह रहे हैं ? नहीं, यह कैसे हो सकता है ?

३ नागरिक --यह नहीं हो सकता--यह झूठ है।

कुछ नागरिक--यही तो ! और क्या ? सुनो।

४ नागरिक--आप समझा कर कहिये. यह क्या रहस्य है ?

कुछ नागरिक--रहस्य ? हाँ, हाँ, समझा कर कहिये।

सिंहरण--तो सुनो ! यदि उद्भाण्ड-वार्ता रहस्यमयी न होती, नागरिको ! गान्धार, पंचनद, मालव, पिप्पली कानन और मगध--समस्त आर्यावर्त की विधि के अन्तराल में प्रतारणा का विष घोला न जाता, सिन्धु और झेलम, व्यास और रावी, गंगा और यमुना, शोण और सरस्वती के तटों पर बसने वाली विशाल आर्य जाति के विरुद्ध स्वार्थ और पराधीनता का षड्यन्त्र न हो रहा होता, उद्भाण्ड के मौन तट पर रक्त और नीचता की असि-धाराएँ भाग्य के अन्धकार में सजाई न जातीं, तो आप ही बताइये, गान्धार वासियो ! तक्षशिला विद्यापीठ की पुष्प-वेष्ठित प्राचीरें छोड़कर हम ब्रह्मचारी आज घर-घर धूनी रमाते हुए क्यों फिरते ? स्पष्ट सुन लीजिये, अचूक जान लीजिये, स्वार्थ और मोह में अन्धे होकर, अभिमान और मूर्खता में मदमस्त होकर—कायरता को कुशलता मानकर महाराज आम्भीक और उनके चाटुकार उद्भाण्ड तट पर

आज यवन सम्राट के अतिथि हुए हैं ! धिक्कार है इन मनस्वी देश-द्रोहियों को !

दो तीन नागरिक—भयंकर !

कुछ नागरिक—असम्भव, ऐसा हो नहीं सकता--नहीं !

५वाँ नागरिक--तो क्या यवन-सम्राट ने महाराज से मैत्री-याचना नहीं की ?

सिंहरण—नहीं । सच तो यह है, गान्धार--स्वाधीन गौरवान्वित गान्धार की श्री, कीर्ति और स्वाधीनता की भेंट लेकर महाराज आम्भीक यवन सम्राट के शिविर में गये हैं, और वह बर्बर दुर्धर्ष यवन सम्राट सिन्धु और झेलम के पवित्र नीर से अपने पैर पखारना चाहता है—यह है वह मित्र-सन्धि, जिसका ढिँढोरा आज पीटा जा रहा है !

६ नागरिक—यह गान्धार का घोर अपमान है !

७ नागरिक—धृष्टता की चरम सीमा है—

सिंहरण—अवश्य, यह धृष्ठता की, अपमान की, छलना और प्रतारणा की चरम सीमा है ! निस्संदेह यह चरम सीमा है दुरभिसन्धि की, नीचता की, कायरता की, स्वार्थपरता और देश-द्रोह की ! और चरम सीमा है गान्धार-वासियो ! अपने धैर्य्य की ! तभी तो उस महान आचार्य ने हमारा आवाहन किया, हमें आज्ञा दी कि हम विद्यापीठ छोड़ें और अग्नि जिह्वाएं बन कर गान्धार के मार्गों पर लपलपायें और भण्डाफोड़ करें उस आनेवाली पराधीनता का, जो हमारी हड्डियों से उद्भाण्ड तट पर लिखी जा रही है।

८वाँ नागरिक—ओ प्रभो ! कुछ समझ में नहीं आता !

सिंहरण—तो और समझो और और सुनो ! सोचते क्यों नहीं आप ? विचार कीजिये, बर्बरों और दस्युओं की प्रचण्ड सेना लेकर जिस लोभी रक्त-पिपासु ने ईरान, मिस्र, बेबिलोन आदि बड़े २ प्राचीन राज्यों को एक ही पादाघात में ढाह दिया, जिसने थीबस की निरीह जनता को तलवार के घाट उतार दिया; जो ग्राम के ग्राम और नगर के नगर जलाता हुआ धँसा आ रहा है, झंझावात की भाँति हिन्दुकुश के दसों गणराज्यों को धराशायी करता हुआ बढ़ा चला आ रहा है, वह प्रचण्ड यवन-सम्राट महाराज आम्भीक को अपना समान मित्र बनायगा ? सच तो यह है भोले गान्धार वासियो ! स्वार्थी और कायर महाराज आम्भीक ने ईर्ष्या और अहंकार से जल कर भूमि, स्वर्ण और पारसीक मदिरा के लिये यवन-सम्राट को आर्यावर्त की अर्गला इस गौरव भूमि गान्धार को बेच दिया है।

९वाँ नागरिक—असंभव ! हम ऐसा नहीं होने देंगे !

१०वाँ नागरिक—मालव सच कह रहे हैं; गान्धार की जनता के विरुद्ध यह भीषण प्रतारणा है, मैं यह जानता हूँ।

१ नागरिक—मैं कहता हूँ हम राज-प्रासाद की ईंट-ईंट बजा देंगे। हम नहीं मानेंगे इस मित्र-सन्धि को, नहीं !

कुछ नागरिक—ठुकरा दो इस मित्र-सन्धि को !

और कुछ—ठुकरा दो ! विद्रोह !!

सिंहरण—विद्रोह ! उद्भाण्ड तट पर एक दुर्धर्ष यवन-सम्राट और एक भीरु राजा बैठ कर मित्र-सन्धि लिख रहे हैं,

और गान्धार के घर-घर में यह श्मशान की शान्ति व्याप रही है—रण-प्रयाण के उत्साहवर्धक दृश्य जब घर-घर होने चाहिये थे, तब यह भयावह निविड़ता ! इस मित्र-सन्धि से अपनी शक्ति बढ़ती, श्री उत्फुल्ल होती, कीर्ति बढ़ती, स्वाधीनता विस्तृत होती तो आज तक्षशिला के अभिजात आचार्य मतिमान विप्र-श्रेष्ठ चाणक्य यह सन्देश देने के लिये तत्पर न होते कि एक अखण्ड और शक्ति-शाली भारतवर्ष का निर्माण करते हुए यवनों को महासागर में ढकेल दो— उद्भाण्ड-सन्धि को सिन्धु में डुबो दो।

कुछ नागरिक—डुबो दो, निस्संदेह ! विद्रोह !!

सिंहरण—विद्रोह ! गान्धार-वासियो ! समय रहते हुए मेरी, हमारी, आचार्य चाणक्य की—समस्त उत्तरापथ की यह पुकार सुनो ! चुप मत रहो, उठो प्रचण्ड आँधी की भाँति उमड़ उठो ! अपने लाखों हाथों से पकड़ लो उस अविचारी पथभ्रष्ट महाराज आम्भीक और उनके चाटुकारों के देशद्रोही हाथ, नागरिको ! विद्रोह !! जय गान्धार ! जय भारतवर्ष !!

समूह—जय गान्धार ! जय भारतवर्ष !!

कुछ नागरिक—काट डालो द्रोहियों को !

कुछ नागरिक—विद्रोह ! गान्धार के शत्रुओं को काट डालो !!

समूह—गान्धार की स्वतन्त्रता की जय ! विद्रोह !!

सिंहरण—विद्रोह ! गंगा और यमुना के नाम में, शोण और सरस्वती के नाम में, व्यास और रावी के नाम में— तथा हिमालय के नाम में विद्रोह !! आज और अभी से गान्धार

की जनता का यह ऊर्ध्व विद्रोही ध्वज समस्त आर्यावर्त का जय-ध्वज है—विद्रोह !!

कुछ नागरिक—हम मर मिटेंगे पर यवनों के ग़ुलाम न होंगे—नहीं !!

सिंहरण—मैं मालवगण के राष्ट्रपति का पुत्र सिंहरण आचार्य चाणक्य के चरणों की शपथ से प्रतिज्ञा करता हूँ कि हिन्दुकुश जिसकी अर्गला थामे हुए है, हिमालय जिसका अभेद्य रक्षक है, कन्या कुमारी जिसकी समुद्र-पौरि है, तीनों दिशाओं में समुद्र जिसके तटों को संगीतमय करता है, उस विशाल आर्यावर्त के लिये, उसकी मंगलमयी स्वाधीनता और एकता की रक्षा के लिये सदैव प्रयत्न करता रहूँगा ! मैं आज घोषणा करता हूँ कि आचार्य चाणक्य के मार्ग-दर्शन में हम इस जर्जर विलग आर्यावर्त को एक, अखण्ड और शक्तिशाली भारतवर्ष में बदल देंगे ! अभेद्य और अविभाज्य होकर हम यवन-दस्युओं का सामना करेंगे और उनको समुद्र में ढकेल कर ही चैन लेंगे ! जय गान्धार ! जय भारतवर्ष !!

(जय-घोष होता है। सहसा कोटपाल, धर्मस्थ और सैनिक-गुल्म का प्रवेश।)

कोटपाल—मालव सिंहरण !

सिंहरण—(न सुनता हुआ)—चाहे फिर वह मालव हो, मागध हो, कठ हो, लिच्छवि या वात्सी हो या शिवि हो, जन्म और जातीयता से हम सब आर्य हैं, ऋषि-मुनियों की सन्तान भारतवासी हैं ! हम एक प्रचण्ड आँधी के समान मँडरा उठेंगे,

और विद्रोह करेंगे यवनों का स्वागत करनेवालों के विरुद्ध ! विद्रोह करेंगे !! आचार्य की यही आज्ञा है !

कोटपाल—(जोर से)—मालव सिंहरण ! चुप हो जाइये । इधर आइये महाशय !

सिंहरण—(देख कर)—क्या है ?

धर्मस्थ—राज्य-परिषद् सहित महाराज-राजेन्द्र आम्भीक की आज्ञा है कि आपको राज्य के सर्वोच्च संरक्षण में इसी पल से लिया जाय और गान्धार की सीमा के बाहर निष्कासित कर दिया जाय ।

कोटपाल—सैनिको ! मालव-गण के राष्ट्रपति के पुत्र महाशय सिंहरण को गान्धाराधिपति के संरक्षण में सम्मान के साथ ले लो—(सैनिक-गुल्म आगे बढ़ कर सिंहरण को घेर लेता है ।)

धर्मस्थ—(आज्ञा पढ़ता है)—तक्षशिला नगर का धर्मस्थ मैं नागरिकों को चेतावनी देता हूँ कि यदि कोई गान्धाराधिपति की यवन-सम्राट महाराजाधिराज अलक्षेन्द्रदेव के साथ हुई मित्र-सन्धि के विरुद्ध मन, वचन या कर्म से किसी भाषा या इंगित से भी होगा तो वह मृत्यु-दण्ड का भागी होगा । राज्य-परिषद् सहित महाराज-राजेन्द्र आम्भीकदेव का यह आदेश सर्वमान्य और अनिवार्यतः आदरणीय है—बिखर जाइये ।

कोटपाल—बिखरिये ! बिखरिये !! सत्वर अपने २ घरों को जाइये—हटिये ।

(लोग चुपचाप सहमे से बिखरते हैं । सैनिक सिंहरण को लेकर चलते हैं । धर्मस्थ और कोटपाल आगे २ जाते हैं ।)

दृश्य—पाँचवाँ

[तक्षशिला-विद्यापीठ का संघाराम। चन्द्रगुप्त मौर्य्य और आचार्य चाणक्य; पीछे से महाराज आम्भीक और वररुचि।]

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(चक्कर काट रहा है; सहसा खड़ा रह कर)—निस्संदेह मैं तेजस्वी क्षत्रिय बनूंगा— कुन्दन के समान तपकर असीम क्षात्र-तेज प्राप्त करूंगा। (निसास) पिप्पलीकानन! एक न एक दिन तेरे सपूतों का उद्धार होगा। वृषल् नहीं। नहीं—आचार्य! हमारा उद्धार करो! (बैठता है) जर्जर, कटा-बँटा आर्यावर्त हमें विरासत में मिला है (एक मानचित्र खोल कर देखता हुआ) यह है वह आपस के क्लेश और द्वेष में फँसा हुआ आर्यावर्त जिस पर बर्बर यवनों ने आक्रमण करने का साहस किया है। (उठ कर तेजस्वितापूर्वक अलक्षेन्द्र तुम्हारा इतना साहस? (चक्कर काटता है) चन्द्रगुप्त! तेरा स्थान संघाराम नहीं, रणभूमि है। (खड़ा रह कर) संघागारों के मतभेदों से निर्बल, अन्याय और अत्याचारों से पीड़ित, शक्तिहीन जनपदों और राज्यों के घरों में छिन्न-भिन्न इस आर्यावर्त का हमें उद्धार करना ही है। विशाल, शक्तिशाली, एक और अखण्ड तेजोमय भारतवर्ष! गुरुदेव! (आचार्य चाणक्य का चुपचाप प्रवेश। चन्द्रगुप्त उनको देख कर हठात् जैसे) आचार्य? प्रणाम स्वीकार हो!

विष्णुगुप्त चाणक्य—आयुष्यमान हो! मानचित्र का अध्ययन कर लिया?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—हाँ, गुरुदेव!

विष्णुगुप्त चाणक्य—तो यह नया मानचित्र लो। (नया मानचित्र देता हुआ) एक, अखण्ड, तेजस्वी और शक्तिशाली भारतवर्ष, वत्स !

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—हाँ, हाँ आचार्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—तो चलो। मैंने देख लिया है, झेलम के किनारे युद्ध होगा। हमें जाना ही होगा; कुलपति हमें आशीर्वाद देने के लिये विद्यापीठ के प्रवेश-द्वार पर अपनी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—तत्पर हूँ; हम कहाँ चलेंगे ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—जहाँ विधाता ले जाय। शस्त्र साथ ले लो, पहने हुए वस्त्र यथेष्ट होंगे।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(प्रेरित)—आचार्य ! (शीघ्रतापूर्वक शस्त्र एकत्र करता हुआ) हम आर्यावर्त का विधि बदल देंगे। आपके मार्ग-दर्शन में हम एक शक्तिशाली भारतवर्ष का निर्माण करेंगे। यवनों को सिन्धु की लहरों में समाधि देंगे, आचार्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—निश्चय ही। सत्य और अमृत से परिपूर्ण, अथाह और अपने अन्तरात्मा का विशाल भारतवर्ष हम निश्चय ही प्राप्त करेंगे।

(सहसा महाराज आम्भीक और वररुचि का प्रवेश)

वररुचि—(सभय, स्पष्टीकरण-सा करता हुआ)—मेरा कोई दोष नहीं, वात्स्यायन ! महाराज का आदेश अमान्य न कर सका।

विष्णुगुप्त चाणक्य— (स्थिर देखता हुआ) — दोष मनुष्य का नहीं होता, विधाता का होता है, वररुचि! (व्यंग पर सस्मित) कहिये, महाराज आम्भीक! अपने आचार्य को प्रणाम करना भ' भूल गये? गुरुकुल की मर्यादा सम्राटों द्वारा भी भंग नहीं की जा सकती, महाराज आम्भीक!

महाराज आम्भीक— धृष्टता क्षमा कीजिये, आचार्य! परन्तु क्या पूछ सकता हूँ, तक्षशिला में यह क्या हो रहा है?

विष्णुगुप्त चाणक्य—क्या हो रहा है, महाराज आम्भीक?

महाराज आम्भीक—आपको जैसे कुछ भी ज्ञात नहीं?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हँस कर)— मुझे सब कुछ ज्ञात है, जो आपको भी ज्ञात नहीं। किन्तु उत्तर पाने का अब आपको क्या अधिकार है?

महाराज आम्भीक— स्मरण रहे आचार्य! यहाँ मैं गान्धाराधिपति महाराज आम्भीक की भाँति उपस्थित हूँ।

विष्णुगुप्त चाणक्य— (म्लान किन्तु सओज हँसकर) — और वह भी एक ब्राह्मण के सामने।

महाराज आम्भीक—आचार्य चाणक्य! हम आदेश देते हैं कि आप बताएँ कि तक्षशिला में यह क्या हो रहा है?

विष्णुगुप्त चाणक्य—आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं केवल ईश्वर और विधि को दे सकता हूँ। आपको—महाराज आम्भीक को नहीं।

महाराज आम्भीक—(सरोष पर संयत)—मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता। मुझे मेरा विवेक रोक रहा है, आचार्य!

किन्तु मुझे विवश न कीजिये।

विष्णुगुप्त चाणक्य—महाराज आम्भीक को अपने सब अधिकार विद्यापीठ के प्रवेश-द्वार पर ही त्याग देने चाहिये थे, जिससे विवश होने का यह अवसर ही न आता।

महाराज आम्भीक—यह राष्ट्र का आपत्ति-काल है। राजाज्ञा से इस समय विद्यापीठ अलग नहीं रह सकते, आचार्य!

विष्णुगुप्त चाणक्य—विद्यापीठों के कर्तव्य और उनकी मर्यादा उनके कुलपति निश्चित करते हैं, सम्राट और महाराजा नहीं। आम्भीक! उद्भाण्ड-तट पर तुमने गान्धार के कर्तव्य की मर्य्यादा निश्चित की, विद्यापीठ में हमने समस्त आर्यावर्त की।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(बीच ही में)— आपको संकोच न हुआ, ग्लानि न हुई, महाराज आम्भीक! जो गान्धार को आपने यवन-दस्युओं के पैरों में रख दिया?

विष्णुगुप्त चाणक्य—वत्स चन्द्रगुप्त! उद्भाण्ड में डूब मरने के लिये यथेष्ट जल नहीं है।

महाराज आम्भीक—समझा! गान्धार की सन्धि-विग्रह की नीति के विरुद्ध वह मालव सिंहरण विद्रोह का ध्वज लेकर क्यों घूमता फिरता था। समझा, तभी आपके स्नातक आपका ढिंढोरा पीटते हुए यों घूम रहे हैं!

विष्णुगुप्त चाणक्य—मेरा? नहीं, महाराजा आम्भीक!

आपने सुना नहीं। वह तो समस्त आर्यावर्त की जनता का सन्देश है।

महाराज आम्भीक—(सक्रोध)—यदि आप मेरे आचार्य न रहे होते, और मैं आपका हृदय से सम्मान न करता होता, तो—।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य— (बीच ही में) — गान्धार नरेश! मेरे जीवित रहते हुए आचार्य का अपमान कोई नहीं कर सकता। सावधान!

महाराज आम्भीक—(दाँत पीस कर)—मेरे राज्य-कोष से पलने वाला यह विद्यापीठ आज राजनीतिक षड्यन्त्रों और प्रतारणाओं का केन्द्र होता जा रहा है। यह हम कदापि सह नहीं सकते, आचार्य! मुझे अपने गुरुकुल का अहित कहीं न करना पड़े। सावधान! सुन लीजिये, इसका दायित्व आप और आपके इस वृषल चन्द्रगुप्त मौर्य्य पर होगा!

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(क्रोध और वेग के साथ)—आम्भीक!

महाराज आम्भीक—महाराज आम्भीक कहो, चन्द्रगुप्त! सावधान, गान्धार की प्रतिष्ठित राजनीति के विरुद्ध विद्रोह करने वालों का दण्ड मृत्यु-दण्ड है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—तेजस्वी चन्द्रगुप्त! मृत्यु को जीतकर जो राष्ट्र की आत्मा और अस्मिता की रक्षा करना जानता है, वही सच्चा क्षत्रिय है। मैं चलता हूँ। (प्रस्थानोद्यत) महाराज आम्भीक! यवन सम्राट से वचन-भङ्ग करने का दण्ड भी मृत्यु दण्ड है। (प्रस्थान)

महाराज आम्भीक—(मारे क्रोध के)—मेरे राज्य में मेरे ही सामने मेरा अपमान ? मेरे प्रति विद्रोह ? असह्य !

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(सव्यंग अट्टहास कर)—क्षत्रिय आम्भीक ! एक दिन तुम्हारा अन्तरात्मा भी तुमसे विद्रोह करेगा।

महाराज आम्भीक—(क्रोध से काँपता हुआ)—चुप रहो, मैं आज्ञा देता हूँ, चुप रहो ! ओह ! वृषल कहीं के ! हम तुझे बन्दी बनायेंगे, तुझे अन्ध-कूप में ढकेल देंगे ! (चन्द्रगुप्त मौर्य्य की ओर लपकता है)।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(सहसा खड्ग निकाल कर)—वहीं ! सावधान, क्षत्रिय आम्भीक ! विद्यापीठ की भूमि में हमने कई बार शस्त्र-परीक्षा दी है—आज अन्तिम शस्त्र-परीक्षा के लिये भी तैयार हूँ !

वररुचि—(सहसा बीच में पड़ कर)— शान्ति ! क्या कर रहे हो, मागध चन्द्रगुप्त ! स्मरण रहे, ये महाराज आम्भीक हैं और हम विद्यापीठ के संघाराम में हैं। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम इसी समय विद्यापीठ त्याग दो।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(खड्ग म्यान में करता हुआ)—संघाराम के स्थविर की आज्ञा शिरोधार्य ! मैं चला, मुझे आचार्य चाणक्य का मौन इंगित बुला रहा है—झेलम की लहरें मुझे पुकार रही हैं। (प्रस्थानोद्यत) आर्य वररुचि ! एक दिन लौट कर मैं आपके दर्शन करूँगा और तब आप मुझे मागध न कह सकेंगे और न यह दम्भी कायर क्षत्रिय-कलंक आम्भीक मुझे वृषल कह कर पुकार सकेगा। (प्रस्थान करता है।)

महाराज आम्भीक—तो क्या तुझे सम्राट चन्द्रगुप्त कह कर पुकारूँगा ?

चन्द्रगुप्त मौर्य—(रुक कर)—आचार्य चाणक्य और ईश्वर का अनुग्रह हुआ तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है, देशद्रोही गान्धार नरेश ! (तेजी से प्रस्थान ।)

महाराज आम्भीक—(क्रोध से पैर पटककर)—उद्धत, उच्छृङ्खल, अविचारी, नीच वृषल ! देख लूंगा । चलिये आचार्य वररुचि ! हम कुलपतिजी से मिलेंगे । उनसे निवेदन करेंगे कि गान्धार-द्रोहियों को विद्यापीठ से अलग कर दिया जाय । चलिये ।

वररुचि—क्षमा, महाराज, क्षमा ! पधारिये ।

(क्रुद्ध और कम्पित महाराज आम्भीक का प्रस्थान, पीछे २ वररुचि)

दृश्य—छठा

[स्थानः झेलम-तट का पार्श्ववर्ती घना जंगल। सिंहरण का यात्री की भाँति प्रवेश ।]

सिंहरण—(रुक कर)—यही झेलम तट का सघन विपिन है । पञ्चनद कैसा शस्य-श्यामल सुन्दर प्रदेश है ? तुम वास्तव में बड़ी सुन्दर हो, भारत भूमि ! परन्तु हम तुम्हारी सन्तान कितनी कुरूप हैं ? (चारों ओर देखकर) कितनी शान्ति

है चारों ओर ! (निसास) केवल तुम्हारी स्मृति अशान्ति बनी हुई है, रजनीगन्धा ! (चलना चाहता है, पर पुनः रुक कर) युद्ध होगा ! यहीं !! आचार्य ! हे ईश्वर ! न जाने क्या बदा है आर्य्यावर्त के भाग्य में ? नाच आम्भीक ! इसी तट पर एक दिन तुम्हारा न्याय होगा। तुम्हारे कलङ्कित रक्त से झेलम का पवित्र जल रँगेगा, निस्संदेह !

(सहसा रजनीगन्धा का सैनिक वेश में प्रवेश।)

रजनीगन्धा—(तीर तान कर)— जो भी हो समर्पण करो, अन्यथा वध किये जाओगे।

सिंहरण—(हाथ उठा कर)— कौन ? रजनीगन्धा ! तुम ! समर्पण ?

रजनीगन्धा—कौन ? मालव ! इस वेश में !! (सस्मित) समर्पण तो करना ही होगा।

सिंहरण—(सहास)—समर्पण ! तुमको ? नहीं, स्वप्न में भी नहीं। (सानंद उत्ताल हास्य) किन्तु तुम इस समय यहाँ ? स्वप्न तो नहीं ?

रजनीगन्धा—नहीं, मालव ! पिताजी की आज्ञा है कि मैं झेलम तट की चौकियों का निरीक्षण कर आऊँ। यवन कदाचित् इधर आयें—और यों गान्धारवाले षड्यन्त्र करते ही रहते हैं। युद्ध होगा ?

सिंहरण—विधि के लेख क्या हैं, कौन जाने ? जाने भी दो इन बातों को। कितने समय के बाद मिली हो, रजनी ? कहो अच्छी तो हो ?

रजनीगन्धा—(अर्ध तन्मय)— चलो, तुम बड़े निष्ठुर निकले। शरदोत्सव की उस मधुर स्मृति ने मुझे बन्दी बना रक्खा है। पर तुमने मुझे एक बार भी याद न किया।

सिंहरण—(पास आकर)—रजनी ! जो हृदय की धड़कन, और प्राणों का प्राण बन गया हो, उस अनोखे को फिर याद कैसे किया जाय ?

रजनीगन्धा—(मुस्कुरा कर)—बड़े चतुर हो ! पुरुषों की मधुर छलना का दूसरा नाम प्रेम है। सपनों में भी जिसने मुझे रुलाया है, उस निर्दय को मैं भली-भाँति जान गई हूँ।

सिंहरण—(हँस कर)—और उस हठी उमा को भी कौन नहीं जानता, जिसने तपोनिधि भगवान शंकर को भी समाधिस्थ न रहने दिया !

रजनीगन्धा—(मुस्कुरा कर, सकटाक्ष) — तो श्रीमान् जैसे तपोनिधि शिव हैं ? (देखकर) वह कौन आ रहा है ?

सिंहरण—(ध्यानपूर्वक देखकर)—पथिक हैं, इधर ही आ रहे हैं।

रजनीगन्धा—(और ध्यानपूर्वक देखकर) — मौर्य्य चन्द्रगुप्त तो नहीं ?

सिंहरण—और साथ में आचार्य हैं क्या ? हाँ, वही हैं रजनी ! लो, आ पहुँचे !

(विष्णुगुप्त चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य्य का प्रवेश ।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—कौन ? सिंहरण ! सारे मार्ग में मैं तुम्हारा विचार कर रहा था। तो तुमको पञ्चनद की सीमा में छोड़ दिया गया है।

सिंहरण—प्रणाम स्वीकार हो, गुरुदेव! पञ्चनद की सजल, सघन सीमा में छोड़ कर आम्भीक ने मेरा हित ही किया है। रजनीगन्धा, ये अपने श्रद्धेय परम पूज्य आचार्य चाणक्य हैं। प्रणाम करो। (रजनीगन्धा चुपचाप प्रणाम करती है।) ये महाराज पौरव की सुपुत्री, विदुषी, वीर रजनीगन्धा देवी हैं। इनके गुणों का जितना वर्णन किया जाय कम है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(बीच ही में सिंहरण के कंधे पर हाथ रखकर)—मैं समझ गया वत्स! (रजनीगन्धा से) चिरंजीव रहो बेटी! कहो महाराज पौरव अच्छे तो हैं?

रजनीगन्धा—आचार्य चाणक्य के आशीर्वाद से पिताजी अच्छे हैं अवश्य, पर पञ्चनद की चिन्ता उनको सता रही है। रात दिन सैन्य-सगठन में दत्तचित रहते हैं। गान्धार और यवनों की सम्मिलित आशंका ने हमें सन्नद्ध और सावधान कर दिया है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—चिन्ता न करो, बेटी! झेलम के मौन तट की वेदना मुझे ज्ञात है। क्षत्रिय-शिरोमणि राजेश्वर पौरव निश्चिन्त रहें, वे अब अकेले नहीं हैं। यवन-अश्वों की लोथों पर लड़खड़ाता हुआ अलक्षेन्द्र एक दिन भारत से भाग खड़ा होगा और तुम और सिंहरण उसे विदा दोगे। मुझे महाराज के पास ले चलो, बेटी!

रजनीगन्धा—(प्रणाम कर)—आचार्य-चरण के स्पर्श से आज पञ्चनद पवित्र होगया है। पधारिये, गुरुदेव! पिताजी आपके दर्शन कर परम सौभाग्यवान होंगे।

विष्णुगुप्त चाणक्य—तब चलो। (चलते २ रुक कर)—सिंहरण ! हमने भूमि को बाँट रक्खा है, आकाश को घेर रक्खा है। इन अप्राकृतिक घेरों का बन्दी मानव-हृदय मिलन और एकता की वेदना में छटपटा रहा है। तुम और रजनीगंधा मिल कर इन सीमाओं को तोड़ दो।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(प्रेरित)—निस्संदेह ऐसा ही होगा आचार्य ! भारत भूमि जब तक एक, सुरक्षित और समृद्ध न होगी, हम अश्व की पीठों पर ही रहेंगे।

रजनीगन्धा—मैं आचार्य के चरणों को छूकर कहती हूँ, मैं सदैव मौर्य्य चन्द्रगुप्त और मालव सिंहरण का साथ दूँगी।

विष्णुगुप्त चाणक्य—चिरंजीव रहो तुम तीनों ! (चलते २) पौरव, क्या मेरी सुनोगे ?

(आगे २ विष्णुगुप्त चाणक्य और पीछे २ तीनों का शांत गंभीरभाव से प्रस्थान)

दृश्य—सातवाँ

[महाराज-राजेश्वर पर्वतेश्वर की अन्तरंग सभा। महामंत्री, सेनापति और पार्षद। पीछे से रजनीगन्धा, विष्णुगुप्त चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य्य।]

राजेश्वर पर्वतेश्वर—उस कुलांगार गांधार नरेश ने पुनः रजनीगन्धा के पाणिग्रहण का प्रस्ताव करने की धृष्टता की है। यवन नरेश से मैत्रीक्या की जैसे स्वयं को भारत का सम्राट मानने लगा है। उत्तर की कोई आवश्यकता नहीं। इसका उत्तर केवल एक है—गान्धार पर आक्रमण !

पार्षद १--सचमुच, महाराज राजेश्वर, सचमुच ! पञ्चनद की सीमा में चौकियाँ बनालीं; हम न बोले, तो समझ गये, हम निर्बल हैं।

पार्षद २—और अब अभिमान में चूर होकर हमें जान-बूझ कर अपमानित किया जा रहा है।

पार्षद ३—हमारी पवित्र राजकुमारी महोदया से विवाह करने का बार २ प्रस्ताव ! असह्य धृष्ठता है, महाराज !

सेनापति—गान्धार-नरेश स्वयं को समझते क्या हैं ?

राजेश्वर पर्वतेश्वर—यवन-सम्राट अलेक्ज़न्द्र ने अपने शिविर में बुलाकर पास बिठा लिया तो जैसे कोई वह देव हो गया हो ! किन्तु तुम नहीं जानते, आम्भीक ! राजेश्वर का यह मस्तक कट सकता है, परन्तु सम्राटों के सामने झुक नहीं सकता। हम कहते हैं, हमारे पदाघात से गान्धार काँप उठेगा।

पार्षद १—पराक्रम के राजेश्वर महाराज अवतार हैं। वीर शिरोमणि की यश-गाथाएँ आज समस्त उत्तरापथ में गाई जाती हैं।

महामंत्री—यह तो है ही। आज्ञा हो तो कुछ आवश्यक निवेदन करूँ। विश्वस्त दूतों से अभी २ पता चला है कि गान्धार-नरेश यवन वाहिनियों की सहायता से पञ्चनद पर आक्रमण करने का कुचक्र बना रहे हैं।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—अच्छा ? चिन्ता नहीं। सेनापतिजी, पञ्चनद के प्रत्येक अधेड़ और युवा को अनिवार्यतः सेना में संलग्न कर दीजिये। इसके पूर्व कि कुलांगार आम्भीक का यह

कुचक्र पूर्ण हो, हम गान्धार पर जा टूटेंगे।

पार्षद २–धन्य !

महामंत्री—किन्तु गान्धार पर आक्रमण करने पर इस समय हमें गान्धार और यवन–दोनों की सम्मिलित वाहिनियों का सामना करना पड़ेगा। यह स्थिति योग्य न होगी। गान्धार और यवन-वाहिनी की सम्मिलित शक्ति के विरुद्ध युद्ध करने के लिये हमें अभी और शक्ति अभीष्ट होगी, महाराज !

राजेश्वर पर्वतेश्वर—चिंता नहीं। वीर क्षत्रिय अपमान सहन करने के पूर्व मृत्यु का आलिंगन श्रेयस्कर मानता है। हम कट जायँगे परन्तु अपमानित और पराभूत न होंगे।

(रजनीगन्धा, विष्णुगुप्त चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रवेश। पर्वतेश्वर के सिवाय सब खड़े होकर रजनीगन्धा का अभिवादन करते हैं।)

राजेश्वर पर्वतेश्वर—आओ, बेटी रजनीगन्धा! बैठो। साथ में कौन हैं ?

रजनीगन्धा—प्रणाम स्वीकार हो, पिताजी! आज अपना परम सौभाग्य है कि तक्षशिला के विख्यात आचार्य चाणक्य स्वयं आपके दर्शन के लिये पधारे हैं।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—(खड़ा होकर)-शुभ! राजेश्वर पर्वतेश्वर का प्रणाम स्वीकार हो, भूदेव! (प्रणाम करता है) आसन ग्रहणकर कृतार्थ कीजिये, भगवन्!

विष्णुगुप्त चाणक्य—(आसन पर बैठते हुए) कल्याण हो, राजन्!

राजेश्वर पर्वतेश्वर—हम सौभाग्यशाली हुए। (चन्द्रगुप्त

मौर्य्य को देखकर) साथ में आचार्यवर का कोई शिष्य है क्या ?

विष्णुगुप्त चाणक्य-मेरे साथ पिप्पली-कानन का राजकुमार और मेरा शिष्य मौर्य्य चन्द्रगुप्त है। राजेश्वर महाराज को नमस्कार करो, वत्स !

चन्द्रगुप्त मौर्य्य-(नमस्कार करता हुआ)-नमस्कार, महाराज !

राजेश्वर पर्वतेश्वर—(घूरकर देखता हुआ)—बैठिये। (चन्द्रगुप्त मौर्य्य आसन ग्रहण करता है।)

महामंत्री—(विनय भाव से)—आचार्यवर की ख्याति इधर सुगन्ध की भाँति फैल रही है। हमारे राजेश्वर महाराज श्रीमान् के साक्षात्कार के लिये बड़े उत्सुक थे। इस समय आपका पधारना एक सुयोग होगया है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—समय पड़ने पर ब्राह्मण बिना बुलाये भी आता है और पञ्चनद-पति जैसे वीर पराक्रमी नरेश के दर्शन की किसके मन में कामना न होगी, महामंत्रीजी ?

महामंत्री—यथार्थ है। आचार्यवर को यह जानकर परम सुख होगा, कि हमारे क्षत्रिय-शिरोमणि महाराज-राजेश्वर अर्थ-शास्त्र में बड़ी रुचि रखते हैं। स्मृतिगत राजधर्म के तो हमारे महाराज आदर्श हैं—कट्टर अनुयायी। उदार, धर्मधीर, साहसी और प्रजावत्सल ऐसे हमारे वीर राजेश्वर महाराज से आप जैसे तपस्वी आचार्यवर का मिलन इस समय अवश्य ही प्रभु का अनुग्रह है।

पार्षद १—यह तो है ही।

पार्षद २—साधु !

पार्षद २—पञ्चनदपति क्षात्र-धर्म के अवतार हैं, आचार्य ! और इस समय पञ्चनद और गान्धार की जो स्थिति है, उसे देखते हुए तो हमारे राजेश्वर महाराज क्षत्रियों में सूर्य की तरह चमकने लगे हैं।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—हम आचार्य जैसे ख्यात ब्रह्मदेव से मिल कर निस्संदेह परम प्रसन्न हुए। हम सदैव सत्पात्र भूदेव से मिलने के लिये तत्पर रहते हैं। आप ख्यात हैं और सत्पात्र हैं, अतः हम आपका आदर करते ह।

विष्णुगुप्त चाणक्य—आप जैसे क्षात्र-दर्प से मण्डित नरेश से मिलकर मैं भी बड़ा विश्वस्त हुआ। राजन्! ब्राह्मण तपस्या से उत्पन्न होता है और प्रतिभा से ख्यात होता है······

राजेश्वर पवतेश्वर—यथार्थ है। परन्तु आचार्यवर! चिंता तो यह है कि आज सच्चा क्षत्रिय तो मिल सकता है; किन्तु सच्चा ब्राह्मण नहीं।

विष्णुगुप्त चाणक्य—सच्चे ब्राह्मण और सच्चे क्षत्रिय की अग्नि-परीक्षा का समय आरहा है, राजन्! यों तो क्षत्रियों का भी कुछ कम पतन नहीं हुआ।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—सच है। उदाहरणार्थ पिप्पली-कानन के क्षत्रियों को ही लीजिये! अपने आचार-विचार के पतन के कारण ही तो भ्रष्ट होकर वे वृषल कहलाये।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(सहसा)—आचार्य ?

रजनीगन्धा—पिताजी ?

राजेश्वर पर्वतेश्वर—क्या है, बेटी ! कटु होते हुए भी सत्य असत्य नहीं हो जाता।

विष्णुगुप्त चाणक्य- सच है। मौर्य्य चन्द्रगुप्त ! शान्त। पञ्चनद-नरेश अर्थशास्त्र के साथ २ इतिहास और पुराण के भी ज्ञाता प्रतीत होते हैं। (हँसकर) आपने यथार्थ ही कहा। किन्तु राजन् ! समय आने पर सत्य का सत्य भी प्रकट हो जाता है। आपको जानकार हर्ष होगा कि पिप्पली-कानन के पतित क्षत्रियों ने पुनः मूर्धाभिषिक्त होने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।

राजेश्वर पर्वतेश्वर— असंभव ! यह कैसे हो सकता है, भूदेव !

विष्णुगुप्त चाणक्य—ब्राह्मण समयानुसार असंभव को संभव कर सकता है।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—और हम उसे स्वीकार न करें तो ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—सनातनकाल से ब्राह्मण की आज्ञा क्षत्रियों के लिये शिरोधार्य रही है और भविष्य में भी रहेगी।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—माना ! किन्तु एक भी वैसा अधिकारी ऋषि हमें बताइये तो सही ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(सहसा बीच में)—आचार्य चाणक्य आपके सामने हैं, राजन् !

राजेश्वर पर्वतेश्वर—(सव्यंग हँसकर)—इसलिये न कि किसी दिन ये तुमको मूर्धाभिषिक्त करेंगे ? किन्तु पतितों का उद्धार करने के लिये स्वयं भगवान अवतार धारण करते हैं। समझे ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—राजन् ! पिप्पली-कानन के क्षत्रियों की चिन्ता मुझे करने दीजिये। मैं तो यही कहने आया हूँ कि शीघ्रही दुर्धर्ष यवन अश्वों की सहस्रों घुड़टापें झेलम के तट से टकराने वाली हैं।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—हमें यह ज्ञात है, आचार्य ! आप निश्चिन्त रहें; झेलम के तट की चिन्ता करने वाले अभी जीवित हैं। हमारा एक क्रुद्ध बाण अलक्षेन्द्र को झेलम के उस पार रोक देगा। उसका शिरस्त्राण भेद कर उसी के पैरों में लुढ़का देगा।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(स्मित के साथ)—मुझे यह सुनकर हर्ष हुआ।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—(सदर्प)—हम किसी के हर्ष के लिये नहीं, अपने क्षात्र-धर्म के पालन के लिये सदैव उद्यत रहते हैं। आपको और भी कुछ कहना है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—कहना है; तभी तो तक्षशिला से चलकर इतनी दूर आया हूँ।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—(सदर्प)—तो शीघ्र कहिये; हम सुनेंगे।

विष्णुगुप्त चाणक्य—मैं ब्राह्मण चाणक्य क्षत्रिय पौरव को सावधान करने आया हूँ कि समस्त आर्यावर्त के मंगल के लिये अपने अभिमान का भी बलिदान करना होगा। गान्धार की जनता ने विद्रोह का झण्डा उठा लिया है। महाराज आम्भीक को आप सन्तुष्ट करदें तो निस्संदेह यवन सम्राट्

झेलम के उस पार ठिठका खड़ा रह जायगा। रजनीगन्धा का हाथ आम्भीक के हाथ में दे दें...

राजेश्वर पर्वतेश्वर—(उठकर)—आचार्य ! आप अपनी मति में हैं ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हूँ। भारतवर्ष की चारों दिशाओं में अन्धकार छाया हुआ है; और मैं जागता हुआ खड़ा हूँ।

राजेश्वर पर्वतेश्वर—आचार्य, हम प्रतिश्रुत होते हैं कि हम यवन सम्राट् से मन्वन्तर तक लड़ेंगे, किन्तु उस कुलांगार गान्धार-नरेश का मुँह तक नहीं देखेंगे।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यह व्यक्ति का नहीं, जाति का प्रश्न है। गान्धार और पञ्चनद की मैत्री समस्त उत्तरापथ में उत्साह की लहर व्याप्त करा देगी। उद्भाण्ड और झेलम की सज्जित वाहिनियों में मालव और पिप्पली-कानन की चतुरंगिणियाँ आ मिलेंगी। भारत भूमि मरोड़ खाकर उठ खड़ी होगी। रक्त का यह अभूतपूर्व महोत्सव देख कर विश्व-विक्रम सूर्यदेव प्रसन्न हो उठेंगे और आर्यावर्त का संकट टल जायगा। हाँ कहो, पौरव !

राजेश्वर पर्वतेश्वर—नहीं ! कंचुकी हमें मार्ग दिखा। (त्वरा से प्रस्थान)

रजनीगन्धा—पिताजी, सुनिये, मेरी सुनिये—(पीछे २ जाती है)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(स्वगत सा)—अब मुझे बता, झेलम !

मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ?

महामंत्री—(विनय भाव से)—आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(देखकर)—आप जो सोच रहे हैं, यथार्थ है, महामंत्री ! अपने वीर-पुंगव महाराज की कठिनाई आपको जितनी ज्ञात है, उतनी मुझे भी है। आप चिन्ता न करें। सेनापतिजी, वत्स चन्द्रगुप्त को अपना सेवक समझें। मौर्य्य ! मेरी सिखाई हुई रणविद्या से महामंत्री और सेनापतिजी की सहायता करो।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(प्रणाम कर)—जैसी गुरुदेव की आज्ञा।

विष्णुगुप्त चाणक्य—पराक्रमी महाराज पौरव की वीरता को सफल और प्रातः स्मरणीय कर दो। आप संकोच न करें, महामंत्री !

महामंत्री—इस अनुग्रह के लिये आभारी हूँ, पूज्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—भारतमाता की हम सब सन्तान हैं। प्रतिभा, शिक्षा, वैभव और त्याग से हम उसे शक्तिशाली बनायेंगे, सेनापति ! अब मैं चलूँगा। सहसा मुझे मेरी जन्म-भूमि ने जैसे बुला लिया !

(विष्णुगुप्त चाणक्य का धीरे २ प्रस्थान। नतमस्तक सब खड़े रहते हैं।)

पर्दा गिरता है।

दृश्य—आठवाँ

[कुछ पञ्चनद-सैनिकों का बातचीत करते हुए प्रवेश ।]

१ सैनिक—(रुककर)—आप लोग मेरी बात नहीं मानते, पर मैं पते की कहता हूँ ।

२ सैनिक—आपका क्या कहना ? आप तो सैनिकों के शुक्राचार्य हैं । अच्छा यह तो बताइये, भवान् ! अब क्या होगा ?

३ सैनिक—होगा वही जो अब तक होता आया है । अपने राजेश्वर महाराज की वीरता जगत्-विख्यात है । क्या कर लेगा यह यवन-नरेश ?

४ सैनिक—हाँ जी ! क्या कर लेगा यह अलक्षेन्द्र ? बहुत हुआ तो कुछ हाथियों को मार डालेगा ।

५ सैनिक—मैं कहता हूँ कुछ न कर पायगा, यह यवन-दस्यु ! बड़ा जगद्विजेता बनने निकला है ! देखते नहीं, पिप्पली-कानन के राजकुमार मौर्य्य चन्द्रगुप्त ने थोड़े ही समय में पञ्चनद की सैन्य का काया-कल्प कर दिया ।

१ सैनिक—गान्धार-नरेश को छठी का दूध याद आ जायगा ! आचार्य पाटलीपुत्र पहुँचने में हैं । मालव सिंहरण अवन्ति गये हैं । दूर-दूर तक रण-निमन्त्रण पहुँचाये जा रहे हैं । विधाता के लेख के समान युद्ध-व्यूह की रचना हो रही है ।

२ सैनिक—इसी झेलम-तट पर यवन आक्रान्ताओं के

सिर हमारे अश्वों की एड़ियों से कुचल दिये जायँगे। मुझ में तो नई स्फूर्ति आ गई है। जो करता है कब साधूँ निशाना, अब साधूँ—अभी! (निशाना साधने की चेष्टा करता है)

३ सैनिक—हाँ-हाँ, मेरे महा सेनापति! दया करो। श्रीमान् का यह निशाना सधता देखकर मैं मूर्छित हुआ जा रहा हूँ। (सब हँसते हैं।)

२ सैनिक—हुं? तो आप लोग मुझे क्या समझते हैं? क्लीव समझ रक्खा है मुझे? निशाचरों की भाँति ही-ही हँसते हुए आप लोगों को शर्म नहीं आती? ठहरो जरा मजा चखा दूँ। (खड्ग निकालने की हास्यास्पद चेष्टा करता है।

३ सैनिक—(नाट्य करता हुआ)—अरे वाह रे मेरे महाराज आम्भीक (जैसे घाव लगा हो) अर्र्र्र! लगा मुझे झटका!

२ सैनिक—(हँस पड़ता हुआ)—गाली न दो मुझे, मित्र! सदियों के बाद पञ्चनद का पानी दिखाने का यह अवसर आया है। उस कुल-कलंक महाराज आम्भीक का नाम न लो, उस द्रोही ने आर्यावर्त का निष्कलंक नाम कलंकित कर दिया है!

४ सैनिक—तो भाई! वह महर्षि दाण्डयायन थोड़े ही है, जो संसार को निरर्थक मान कर काँच के टुकड़े की तरह त्याग दे। वह तो उसका वश चले तो भारतवर्ष का सम्राट् हो जाये।

५ सैनिक—भारत-भूमि का सम्राट् होना कौन नहीं चाहता? क्या अपने परम मान्य राजेश्वर यह नहीं चाहते? सब चाहते हैं। इस संसार की रीति ही ऐसी है कि जिसके खड्ग

का लोहा अटूट है, वह इस संसार को पा जाता है। (देखकर) कदाचित् राजकुमारी हैं। इधर ही आ रही हैं—बाप रे, चलो! अन्यथा वृथा परिभ्रमण के दोष में कस दिये जायँगे। चलो, चलो—सटक जायँ। (सब का जल्दी २ प्रस्थान।)

(सैनिक वेश में रजनीगन्धा का दूसरी ओर से विचार-मग्न प्रवेश।)

रजनीगन्धा—(खड़ी रह कर)—सिंहरण! दिन हो गये, तुम्हारा कोई सँवाद नहीं। (चारों ओर देख कर) सघन नीरव मौन है। ये वृक्ष, यह बिछी हुई पृथ्वी—ये दिशाएँ, सभी मौन हैं। तब मैं ही मन में कोलाहल से भरी हुई हूँ! सिंहरण! मेरे सिंहरण! तुम कहाँ हो?

(दूसरी ओर से चन्द्रगुप्त मौर्य्य का प्रवेश।)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—कौन देवी रजनीगन्धा? मैं तो आप ही को खोज रहा था। (पास आकर) किस चिन्ता में हो? सिंहरण सकुशल हैं।

रजनीगन्धा—(मुस्करा कर)—होंगे। मुझे क्या? छोड़ो, मौर्य्य! आज मैं महर्षि दाण्ड्यायन के पास गई थी। मुझे व्याकुल देख कर महर्षि बोले, "सब एक हैं, शान्त हैं, अबाध और मुक्त हैं।" किन्तु मेरी चिन्ता न मिटी। मेरा मन चिन्ता का एक विराट् बादल हो गया है जैसे! क्या होगा?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—अपनी जय होगी, और कुछ न होगा। इसी झेलम के किनारे संसार का सम्राट् बनने का स्वप्न देखने वाला यह यवन-महीपति समझ जायगा कि आर्यावर्त हिन्दुकुश

नहीं, हिमालय है। निर्भय होकर अपने कर्तव्य में लगिये। चलिये, अभी महत्वपूर्ण मंत्रणा हो रही है। महाराज ने आपको याद किया है।

रजनीगन्धा—चलिये। (चलते २) सिंहरण कुशल तो हैं?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—क्यों? आपको इससे क्या? (हँसता है) व ४, रुष्ट हो गईं? अच्छा, अपने प्रिय सिंहरण को आप मुझसे सकुशल हृष्ट-पुष्ट ले लीजियेगा! (निसास लेकर) सिंहरण से मुझे ईर्ष्या होती है।

रजनीगन्धा—(रुककर)—क्यों? सुनूँ तो भला।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—बड़भागी है वह, और क्या? हमें भी कोई ऐसी तन्मय प्रेम करने वाली सुहृदया मिलती! (हँसता है)

रजनीगन्धा—(मुस्कुरा कर)—सुनो, मौर्य्य! एक बात कहूँ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—कहिये—अवश्य!

रजनीगन्धा—मुझे गुप्त-संवाद से पता चला है कि यवन-शिविर में एक अनन्य सुन्दरी भी है। इच्छा हो तो प्रयत्न करूँ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(ठहाका मारकर)—क्या प्रस्ताव किया है आपने, रजनीगन्धा! खूब! मेरे लिये भारतवर्ष में हृदय-दान देने के लिये कोई रमणी नहीं बची; मुझे यूनान जाना होगा इसके लिये—(पुनः हँसता है) भगिनी! सिंहरण के समान हम भाग्यशाली नहीं हैं, समझीं आप—चलिये, चलिये, महाराज आपकी राह देख रहे होंगे। (दोनों का प्रस्थान)

पर्दा उठता है।

दृश्य—नवाँ

[पाटलीपुत्र के उपनगर कुसुमपुर का प्रासाद-उद्यान। सम्राट नन्द का अपने कुछ निजी पार्षदों, कृपा-पात्रों तथा अधिकारियों के साथ वसन्तोत्सव मनाना। प्रासाद-उद्यान में आनन्द का वातावरण छाया हुआ है।]

सम्राट् नन्द— (आत्मविभोर हो गया हो ऐसे) — आसव ! मन्दाकिनी ! आसव !

मन्दाकिनी— (आसव-पात्र भरती हुई) — परम रमणीय सम्राट् ने मेरे मन की बात चुराली !

सम्राट् नन्द— (सस्मित मादक नयनों से देखते हुए) — हम सदैव नागरी के सरस हृदय को चुराया करते हैं ! (आसव-पात्र खाली कर) सुरसिके ! वसन्त-श्री से यह उद्यान यौवनोन्मादित हो उठा है, और हमारा रस–कातर हृदय मदिर स्वप्न से अभिभूत—आसव ! (पात्र आगे बढ़ाता है) हम तुम भी रस–खानि के मन को नहीं, हृदय को चुराया करते हैं (उत्ताल हास्य) क्यों, अमात्य राक्षस ! हमने ठीक कहा या नहीं ?

अमात्य राक्षस—उत्तमोक्ति है, सम्राट् !

सम्राट् नन्द— (आसव-पात्र खाली करता हुआ) — सम्राट ! नहीं, अभिसार के इस झूमते हुए पर्व में हम सम्राट् नहीं; हम एक रस के भृँग हैं। (उठ कर मन्दाकिनी से) खिलो, पुष्प-सुन्दरी मन्दाकिनी ! कूको इस प्रेमोद्यान में तुम— मेरे हृदय

में, रसेश्वरी ! [वापस बैठ कर] आसव ! इतनी प्यास कि रस के सागर पी जाऊँ ।

मन्दाकिनी—(आसव-पात्र भरती हुई)—रसिक शिरोमणि का यह मधुर सौजन्य मुझे विवश कर गया ।

सम्राट नन्द—(आसव-पात्र खाली कर)—हम कृतार्थ हुए, सफल मनोरथ ! तुम सी मधुरातिमधुर सुरसिका हमें अपना बना गई ! धन्य ! (उठ कर) हमारा यह मन उल्लसित हो उठा; तुम्हारे इस अथाह मौन निमन्त्रण से अपलक सरस नयनों में हम डूब गये। कुछ गाओ, गाओ मन्दाकिनी ! गाओ... ।

मन्दाकिनी—(बीच ही में मुस्करा कर)— जो पराग-भार से उन्मादित सुमनहृदयों में स्पन्दित होता है और... ।

अमात्य राक्षस—और जो भृंग के गुञ्जन में झूमता है ।

सम्राट् नन्द—अति सुन्दर ! क्या कहा है, जो झूमता है ! वाह ! अमात्य राक्षस ! आसव !

अमात्य राक्षस— श्रीमानेश्वर का यह सेवक धन्य हुआ ।

सम्राट् नन्द— (आसव-पात्र खाली कर) — और हम परम प्रसन्न हुए। उठो, प्रियतमे मन्दाकिनी ! अपने चिर-चञ्चल नूपुरों से हमारे इस सूने हृदय-भवन को रुनझुना दो । झंकृत कर दो हमारा यह एकाकी मन अपने कोकिल-कण्ठ से—बेध दो हमें अपने सलोने कटाक्षों के पञ्चबाण से, हृदयेश्वरी !

मन्दाकिनी— जैसी परम उदार रसिक-शिरोमणि की आज्ञा !

सम्राट नन्द—आज्ञा ? और तुमको ? लो ! नहीं, कदापि नहीं। कोमल कली को भ्रमर आज्ञा दे ? अ-स-भ-व ! यह भ्रमर की धृष्ठता होगी—मूर्खता ! यह तो मेरा तुम से अत्यन्त नम्र निवेदन है, अनुनय है। स्वीकार करो, प्राणेश्वरी !

मन्दाकिनी—(लज्जा कर कटाक्ष-पात के साथ उठती हुई)—यह तुच्छ नागरिका यह मधुर अनुग्रह पाकर अप्रतिहत्‌चित्त हो उठी है। रसिक-चूड़ामणि का यह प्रेमदान इस मादक वसन्तोद्यान को मेरे लिये चिर-स्मरणीय कर गया। मैं सफल मनोरथ हुई !

सम्राट् नन्द—और हम वास्तव में कृतकार्य हुए ! (कण्ठ से हार उतार कर मन्दाकिनी को पहनाता है) मनमोहिनी ! अब कूजो।

मन्दाकिनी—रसिको ! ऐसे ही सघन-सुन्दर कुसुमोद्यान में, जब मञ्जरियों के विकच भार से आम्रवन विनीत था, और कोयल वसन्तागम से मतवाली हो गई थी, महाश्वेता ने पुण्डरीक को देखा था और अर्जुन ने सुभद्रा को तथा देवताओं ने अप्सराओं को !

सम्राट नन्द—(झूमता हुआ)—अति, अति सुन्दर ! (पास आकर) मन्दाकिनी !

मन्दाकिनी—(विह्वल कर)— और मैंने आज सघन-रस की कामना से उद्वेलित, विभोर मदन-मद-मत्त महाराज नन्द को देखा।

सम्राट नन्द— (विभोर) — मेरा सर्वस्व तुम्हारा है— तुम्हारा ! मुझे अनुगृहीत करो—मत तरसाओ ! (आलिंगन करने

की चेष्टा करता है, परन्तु मन्दाकिनी छिटक कर नृत्य आरम्भ कर देती है)

मन्दाकिनी— (नाट्य के साथ गाती है) — रञ्जने ! रञ्जन रुचिर कर ! (दुहरा कर) विरस मन को अब सरस कर ! यौवनोन्मादित वसन्तिक राग से गुञ्जन गहन कर ! रञ्जने ! रञ्जन सरस कर !

अमात्य राक्षस—(तन्मय)—धन्य हो, गणिकोत्तमा मन्दाकिनी ! धन्य !

मन्दाकिनी—(उत्साहित)—तुम हरो मेरी विरसता, तुम हरो मेरी विजड़ता ! (नन्द की ओर कटाक्ष कर) हे मनोहर ! विकल मेरे हृदय को, मादल-मुखर कर ! रञ्जने ! रञ्जन मधुर कर !

सम्राट् नन्द—(झूमकर)—मधुमय ! मादक ! आह !

मन्दाकिनी— (स्मित-कटाक्ष के साथ) — बज रहे नूपुर, क्वणित कटि-किंकिणी आतुर प्रिया की ! कौंधते आकुल कटाक्षों में सनी आशा प्रिया की ! स्वप्न में ही आ निठुर तू ! तृप्त प्रिय के अधर-द्वय कर ! रञ्जने ! रञ्जन अमर कर।

सम्राट् नन्द— निछावर हूँ तुझ पर, प्रियतमे ! चिरजीओ मेरे हृदय में !

(सहसा दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक—(भयभीत)—सम्राट् की जय हो ! अभय !

सम्राट नन्द—(प्रमत्त सा)— अभय ! इस समय हमने

प्राणीमात्र को अभय दिया—भूतमात्र को। वह, क्या कहना चाहता है? अमात्य राक्षस, रंग में भंग करने वाले इस मूर्खो-त्तन्द से पूछिये, क्या कहना चाहता है?

दौवारिक— (अभिवादन करता हुआ) — प्रभो! द्वार पर तक्षशिला विद्यापीठ के ख्यात आचार्य चाणक्य खड़े हैं। वे अभी इसी समय श्रीमानेश्वर के दर्शन करना चाहते हैं।

अमात्य राक्षस—(हँसकर)—सम्राट्! यह तो उस चणक का पुत्र चाणक्य है।

सम्राट् नन्द—उस चणक का पुत्र चाणक्य? हमारे दर्शन करना चाहता है? अभी इसी समय? ठीक है। अमात्य! यह उसी अभिमानी धृष्ट ब्राह्मण चणक का पुत्र है न, जो हमारी प्रजा को वर्णाश्रम धर्म के लिये उत्तेजित किया करता था और दण्ड-स्वरूप जिसकी वृत्ति हमने बन्द कर दी थी?

अमात्य राक्षस—वही है प्रभो! यह चाणक्य उसी दुर्विनीत चणक का पुत्र है। अब आचार्य चाणक्य हो गया है! समझ में नहीं आता, महामना कुलपतिजी को यह क्या सूझा था, जो इसको आचार्य बना दिया। सुना है, यह चाणक्य भी भगवान तथागत के मत को नहीं मानता।

सम्राट् नन्द—नहीं मानता? हम मनाकर छोड़ेंगे! (दौवारिक से) जा, उस ब्राह्मण को अभी इसी समय हमारे सामने उपस्थित कर। (दौवारिक अभिवादन कर पिछले पैरों जाता है) नहीं मानता! हम इन ढीठ ब्राह्मणों को अपने साम्राज्य के बाहर करके रहेंगे, या

उनको संघ की शरणागति में ला कर रहेंगे। अवश्यमेव यह करेंगे, अमात्य ! (हास्य)

अमात्य राक्षस—समीचीन है, महिमन्! (देखकर) वह आ रहा है, निभय ऊर्ध्व ग्रीवा से चलता हुआ ! (हँसकर) आचार्य चाणक्य ! वधि.!

सम्राट् नन्द—ऐसे आचार्यों से हम स्वस्तिवाचन करवाते रहते हैं, अमात्य ! इन पाखण्डो ब्राह्मणों का समूल नाश होना चाहिये ! आसव ! (मन्दाकिनी आसव-पात्र भरकर देती है) चाणक्य !

(विष्णुगुप्त चाणक्य का दौवारिक के साथ प्रवेश। दौवारिक का दूर खड़े रहना)

विष्णुगुप्त चाणक्य—तपस्वी चणक का पुत्र मैं ब्राह्मण चाणक्य महाराज को आशीर्वाद देता हूँ कि आपको सन्मति प्राप्त हो। शुभ कार्य महाराज का कल्याण करे।

सम्राट् नन्द—(आहत)—अमात्य राक्षस !

अमात्य राक्षस—आचार्य चाणक्य ! राज्य-मर्यादा सीखना क्या आपको अभीष्ट नहीं ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—बौद्ध अमात्य ! राज्य-मर्यादा की स्थापना करने वाला ब्राह्मण यह जानता है कि उसे क्या अभीष्ट है और क्या नहीं। (सस्मित) क्या सम्राट् नन्द को मेरा आशीर्वाद अच्छा न लगा ? आशीर्वाद के निस्वार्थ वचन सुनकर यदि महाराजाधिराज को अच्छा न लगा हो, तो मैं निरुपाय हूँ। किन्तु सम्राटों को ब्राह्मण केवल आशीर्वाद ही दे सकता है।

सम्राट् नन्द—(घृणा से)—हमें ब्राह्मणों का आशीर्वाद अभीष्ट नहीं ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—किन्तु ब्राह्मण को यह अभीष्ट है कि वह नृपतियों और सम्राटों को प्रजापालन और अभ्युदय के लिये निरंतर आशीर्वाद देता रहे तथा दृढ़तापूर्वक उनका मार्ग-दर्शन करता रहे ।

सम्राट् नन्द—ज्ञात होता है कि तुम अपने दण्डित पिता के समान ही धृष्ठ हो ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—पिता ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है, यह आर्य-वाक्य कदाचित् सम्राट् को ज्ञात नहीं ।

सम्राट् नन्द—हमें उपदेश देने की धृष्ठता न कर ब्राह्मण ! संघ की शरणागति सदैव हमारा मंगल करती रहती है, समझा ? अब हमारे समक्ष से हट जा ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—सम्राट् ! तक्षशिला से चल कर, झेलम के किनारे होता हुआ मैं अपनी जन्मभूमि में उसके सम्राट् के समक्ष इसलिये नहीं आया, कि आकर चला जाऊँ । मैं यह कहने आया हूँ, महाराज ! कि उत्तरापथ पर भयंकर यवनों का आक्रमण हो चुका है । सम्राट् अलक्षेन्द्र अपने सामने और किसी को सम्राट् नहीं समझता । महाराज ये राग-रंग त्याग कर पञ्चनद-पति की सहायता के लिये चलें—यही मेरा निवेदन है ।

सम्राट् नन्द—अपनी मर्यादा में रह, ब्राह्मण ! जा, अपनी

पोथी लिख और ब्रह्मचारियों को शिक्षा दे। सम्राटों से निवेदन करना तेरा काम नहीं।

विष्णुगुप्त चाणक्य—प्रतापी अजात शत्रु के द्वारा विस्तारित और महापद्म-नन्द के द्वारा छीन लिये गये इस साम्राज्य की प्रजा को मैंने देखा है, सम्राट्! हिमालय से कन्या-कुमारी तक फैली हुई विविध भारतीय प्रजाओं की सदियों की स्वाधीनता यवन-तलवारों के साये में आ पड़ी है। महाराज, मेरा आग्रह है कि आप ब्राह्मण-द्रोह त्याग दें और मैं बताऊँ उस प्रकार इस समय अपना कर्त्तव्य करें—मगध का इससे अपार हित होगा।

सम्राट् नन्द—ब्राह्मण! तू हमें नहीं जानता। जा, मगध का हित-अहित हममें समाहित है। जा, चला जा—ये आये हैं हमें राज-दण्ड सँभालने की शिक्षा देने!

विष्णुगुप्त चाणक्य—सत्य और तप से पूर्ण ब्राह्मण के उपदेश और आशीर्वाद के बिना साम्राज्यों के राजदण्ड राक्षसीय और नीच-कर्मी हो जाते हैं सम्राट्!

सम्राट् नन्द—(अट्टहास)—ज्ञात होता है, तू हमारे भीषण क्रोध से परिचित नहीं है। ब्राह्मण! इस पृथ्वी पर हम ब्राह्मण का समूल उच्छेद करने के लिये ही अवतरित हुए हैं—समझा! (अट्टहास) मूर्ख! साम्राज्य के राज्य-दण्ड शक्तिशाली हाथों में रहते हैं, ब्राह्मणों के स्वस्तिवाचन में नहीं।

विष्णुगुप्त चाणक्य—सम्राट् नन्द! ब्राह्मण-द्रोह सम्राटों

के शक्तिशाली हाथों को भी तोड़ देता है।

सम्राट् नन्द—क्या कहा ? (दाँतपीस कर) हमारी वृत्तियों से पलने वाला, मूर्तिपूजक, स्मृतियों का दास, लोक की दानेच्छा पर जीनेवाला निर्धन दीन ब्राह्मण ! हम उसे मसल देंगे।

विष्णुगुप्त चाणक्य— ब्राह्मण को मसलने वाले हाथ विधाता बना नहीं सकी है, सम्राट् नन्द !

सम्राट् नन्द—(मारे क्रोध के काँपता हुआ)— चुप रहो ! हम आज्ञा देते हैं, चुप रहो !

विष्णुगुप्त चाणक्य— महापद्म के जारज पुत्र नन्द ! ब्राह्मण के स्वर को तुम चुप नहीं कर सकते। पृथ्वी और आकाश जब स्वेच्छाचारी लंपट अराजक के सामने चुप हो जाते हैं, जब भय का मौन भूमण्डल को घेर लेता है, तब केवल ब्राह्मण ही बोलता है।

सम्राट् नन्द—चाणक्य ! तेरा सिर धड़ पर बोल रहा है !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हँसकर)—मैं आर्य शकटार नहीं हूँ, महाराज नन्द ! भूगर्भ मुझे दबा नहीं सकते; मृत्यु मुझे निर्जीव नहीं कर सकती ; अभी तुम्हारा पाला किसी ब्राह्मण से नहीं पड़ा है, समझे !

सम्राट् नन्द—(पैर पटक कर)— अमात्य राक्षस ! निकाल दो इस धृष्ठ, अविचारी शिष्टाचार-हीन ब्राह्मण को निकाल दो यहाँ से, इसकी लम्बी चुटिया पकड़ कर—घसीट कर फैंक दो इसे कुसुमपुर के मार्ग पर—निकाल दो !

अमात्य राक्षस—महाराज !

सम्राट् नन्द—आज्ञा शिरोधार्य हो ! निकाल दो इस नीच ब्राह्मण को हमारे सामने से चुटिया पकड़ कर निकाल दो— (झपट कर विष्णुगुप्त चाणक्य को धक्का मारता है। विष्णुगुप्त चाणक्य गिर पड़ता है। सम्राट् नन्द विष्णुगुप्त चाणक्य की चुटिया पकड़ कर खींचता है और लात मार कर) **चला जा ! जा—निकल जा यहाँ से !**

(कुछ पार्षद और अधिकारी विष्णुगुप्त चाणक्य को खड़ा कर धक्का मारते हैं। विष्णुगुप्त चाणक्य लड़खड़ाता है, किन्तु खड़ा रह कर बोलने की चेष्टा करता है। सम्राट् नन्द क्रोध के मारे काँपता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(चकित और दिग्मूढ़ जैसा)—**महापद्म के जारज पुत्र नन्द ! शोक !** (सिर धुन कर) **विधाता तुझ से वाम हो चुकी है !** (बल पूर्वक खड़ा रह कर) **विश्व के अधिदेवों ! सुनो ! ब्राह्मण चाणक्य प्रतिज्ञा करता है कि एक दिन इस अपमानित नागिन के समान शिखा को, इस पापी अराजक अत्याचारी के वंश भर का समूल उच्छेद कर इसका रक्त-तर्पण कर पुनः बाँधूंगा—निश्चय ही ! जबतक तेरा नाश न कर दूँगा, तबतक यह शिखा न बाँधूंगा, नन्द !** (त्वरा से जाता है)

सम्राट् नन्द— (अट्टहास्य) **— मत बाँधना भिखमंगे !** (अट्टहास पर अट्टहास) **आचार्य चाणक्य !** (पुनः अट्टहास) **आसव ! प्रियतमे मन्दाकिनी ! आसव !**

(मन्दाकिनी भयभीत आसव-पात्र भरती जाती है और सम्राट् नन्द पीता रहता है।)

पर्दा गिरता है।

द्वितीयाङ्क

दृश्य—पहला

[महर्षि दाण्ड्यायन के आश्रम का पार्श्ववर्ती जंगल । विष्णुगुप्त चाणक्य का विवर्ण और संतप्त प्रवेश । पीछे से चन्द्रगुप्त मौर्य्य, महर्षि दाण्ड्यायन, अलक्षेन्द्र, सेल्यूकस, फिलिप, हेलन और यवन-सैनिक गुल्म ।]

विष्णुगुप्त चाणक्य—(रुककर)—मौर्य्य ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो सिंहरण ? (चक्कर काट कर) महापद्म के जारज पुत्र नन्द ! (खुली हुई शिखा पर हाथ फेर) धैर्य्य, मेरी काल-सर्पिणी ! धैर्य्य ! ओह ! (पुन: चक्कर काट कर) ब्राह्मण ! तेरा इतना अपमान—भर्त्सना ! चाणक्य ? (पुन: चक्कर काटता है, फिर रुक कर) प्रतिहिंसा ! (सिर हिला कर) हाँ, अवश्य, निश्चित ! (म्लान हँस कर) एक दिन मैं तुझे पुनः बाँधूँगा, एक दिन ! (स्वतः ही व्यंग से हँसकर) आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य—वाह ! (अविचल भाव से क्षितिज की ओर देखता रहता है) ।

—शोक मत करो चन्द्रगुप्त! तुम्हारे आचार्य की यह काल-सर्पिणी खुली हुई शिखा तभी बँधेगी, जब सम्राट् नन्द और उसके साम्राज्य का नाश हो जायगा। (अट्ठहास) यह चाणक्य करेगा—निश्चय ही!

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—अवश्यमेव, गुरुदेव! एक दिन लक्ष्य-विधि सेनाएँ पाटलीपुत्र के राजमार्ग पर सुसज्जित खड़ी होंगी; सहस्रों विजय-केतुओं से गगन-मण्डल भरा हुआ होगा—अन-वरत जय-जयकार से दिग-दिशायें परिपूर्ण होंगी। भारतवर्ष की पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र आचार्य चाणक्य की जय हो—अंकित होगा, उस दिन अनगिन मुखरित मानव-मेदिनी के सम्मुख सप्तसिन्धु के पवित्र जल से अपने आचार्य के चरणा-रविन्दों को पखार कर मैं निवेदन करूँगा—मेरे आचार्य! अपनी खुली हुई शिखा बाँधिये! (अटल संकल्प के भाव में स्थिर खड़ा रहता है)

विष्णुगुप्त चाणक्य— यही होगा—यह होगा क्या? होगा! प्रतिहिंसा!!

[महर्षि दाण्ड्यायन का स्नान कर आश्रम को लौटते हुए प्रवेश]

महर्षि दाण्ड्यायन—(ठहर कर)—इस शान्त वायु-मण्डल में अग्नि का जलता हुआ शब्द किसने फेंका? (पहिचान कर) विष्णुगुप्त है क्या?

विष्णुगुप्त चाणक्य— (पहिचान कर सहसा दाण्ड्यायन के चरणों में गिरकर)—प्रणाम स्वीकार हो, महर्षि दाण्ड्यायन! इस

अपमानित दीन ब्राह्मण, आपके शिष्य चाणक्य के ! (दाण्ड्यायन के चरणों को ज़ोर से पकड़ कर) मुझे इन चरणों में शान्ति दो, शान्ति, गुरुदेव ! (चन्द्रगुप्त मौर्य्य चुपचाप प्रणिपात करता है)

महर्षि दाण्ड्यायन— (विष्णुगुप्त चाणक्य को कंधे से पकड़ कर उठाने का प्रयत्न करते हुए) उठो, विष्णुगुप्त ! तुम्हारा कल्याण हो।

विष्णुगुप्त चाणक्य— (सजल नेत्रों से चरणों पर सिर रगड़ता हुआ)—कल्याण ! मेरा कल्याण, महर्षे ! कैसे होगा ? अपमान की आग में जलता हुआ, पतित, दीन मैं एक ब्राह्मण हूँ—मुझे कुछ नहीं चाहिये, शान्ति चाहिये ! केवल शान्ति, गुरुदेव !

महर्षि दाण्ड्यायन—(शान्त भाव से)— तुम्हारी अशान्ति तुम्हीं से उत्पन्न हुई है, चाणक्य ! अपनी शान्ति भी तुम्हीं को प्राप्त करना है।

विष्णुगुप्त चाणक्य— (उसी तरह) — हाँ, अपनी शान्ति मुझी को प्राप्त करना है—सच कहा, गुरुदेव ! सच कहा। परन्तु मैं अशक्त हूँ।

महर्षि दाण्ड्यायन—स्वयं के भय से मृत्यु और स्वयं के सम्मोह से अशक्ति उत्पन्न होती है। इन्हें त्याग दो, विष्णुगुप्त ! उठो !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(उठता हुआ)—अपने विष को मैं जानता हूँ, गुरुदेव ! पर क्या करूँ ? निर्जीव हो गया हूँ जैसे... !

महर्षि दाण्डयायन—चैतन्य कभी निर्जीव नहीं होता,

और जड़ कभी सजीव नहीं होता, वत्स ! अपने अथाह अमृत का साक्षात् करने में लगो। चाणक्य, तुम्हारी कातरता तुम्हारे आहत ब्राह्मणत्व के अभिमान से उत्पन्न हुई है, उसे दूर करो।

विष्णुगुप्त चाणक्य—महर्षे !

महर्षि दाण्ड्यायन—(सस्मित)—हाँ, चाणक्य ! अभिमान से सिद्ध विद्या असफल रहती है। स्वच्छ और नम्र विद्या दृढ़ और शान्त ज्ञान को जन्म देती है। ब्राह्मणत्व का अहंकार त्याग दो, तुम्हें शान्ति मिल जायगी। ब्राह्मणत्व अहंकारी ऊर्जस्व में नहीं, नम्र किन्तु अविचल ज्ञान-शक्ति में है। समझे !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(प्रेरित)—समझा गुरुदेव !

महर्षि दाण्ड्यायन—आसक्ति से प्रवाहित होकर भागो नहीं, अनासक्त होकर आगे बढ़ो। विनम्र और अपराजित ब्राह्मण होकर अपना मनोरथ सिद्ध करो। समय आने पर मैं स्वयं तुम्हें आश्रम में बुला लूँगा। अब विश्वस्त हो जाओ।

(विष्णुगुप्त चाणक्य के सिर पर हाथ रखता है)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(परम शान्ति अनुभव करता हुआ)—इस शान्ति के लिये मैं क्या नहीं त्याग सकता ?

महर्षि दाण्ड्यायन—असमय का त्याग पलायन है, समय का अत्याग पतन है। समझो और अनुभव करो। तुम्हें और चन्द्रगुप्त को अभी जाति के मनोरथपूर्ण भविष्य को सिद्ध करना है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—भविष्य ? जाति का ?

महर्षि दाण्ड्यायन—हाँ। सन्नद्ध हो जाओ। अविचल और जाग्रत होकर भारतवर्ष की उदीयमान विधि का निर्माण करो। जय तुम्हारी होगी।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(प्रणाम कर)—महर्षे !

महर्षि दाण्ड्यायन—महर्षि नहीं, जीवन की शेष कर्म-चक्र में घूमने वाली असीम चैतन्य की एक लहर—दाण्ड्यायन !

[यवन-सेनापति फिलिप का एक यवन-गुल्म के साथ प्रवेश]

यवन सेनापति फिलिप—साधु दाण्ड्यायन के भवन का मार्ग क्या यही है ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—तुम कौन हो ? महर्षि दाण्ड्यायन को क्यों खोज रहे हो ?

यवन सेनापति फिलिप— निकाडोर एलेक्जेण्डर साधु दाण्ड्यायन से मिलना चाहते हैं। मैं उनका दूत हूँ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यवन ! साधु सम्राटों से मिला नहीं करते। सम्राट् ही साधु से मिलने आते हैं। (मुस्कुरा कर) किन्तु तुमको अभी आर्यावर्त की रीति और असिधारा की जानकारी कदाचित नहीं।

सेनापति फिलिप—क्षमा कीजिये, महोदय ! क्या साधु दाण्ड्यायन आप ही हैं ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—नहीं, यवन सेनापति ! महर्षि ये खड़े ! इन्हें प्रणाम करो।

सेनापति फिलिप—(महर्षि दाण्ड्यायन को प्रणाम कर)—तेजस्विन्! हमारे देव-देव परम पराक्रमी सम्राट् निकाडोर एलेक्जेण्डर को, जब वे भारत विजय के लिये प्रस्थान करने लगे, गुरुवर अरस्तू ने आज्ञा दी थी कि सम्राट् आपसे मिलें। अतएव सम्राट् ने निवेदन करवाया है कि आपको उनसे मिलने की कब सुविधा हो सकती है?

महर्षि दाण्ड्यायन—हमें किसी से मिलने और बिछुड़ने की इच्छा नहीं। यहाँ च्यूंटी भी पधार सकती है और सम्राट् भी आसकता है। हम कहीं न आते हैं और न जाते हैं। हमारी कोई गति नहीं।

सेनापति फिलिप—साधु देव! आप-आप अप्रसन्न हो गये?

महर्षि दाण्ड्यायन—हमारा कोई राग-द्वेष नहीं, अतः हम प्रसन्न-अप्रसन्न नहीं।

सेनापति फिलिप—तो, तो में निकाडोर सम्राट एलक्जेण्डर से क्या निवेदन करूं?

महर्षि दाण्ड्यायन—मेरा कोई कथन नहीं; मेरा कोई श्रवण नहीं। (जाने लगता है।)

(सहसा सम्राट् एलेक्जेण्डर, सेल्यूकस, कुमारी हेलन, एवं अंग-रक्षकों का प्रवेश।)

सम्राट एलेक्जेण्डर—ठहरिये, साधुदेव! मैं स्वयं ही उपस्थित हूँ। क्षमा करें, यदि कोई अविनय हुआ हो तो!

महर्षि दाण्ड्यायन—(ठहर कर)—आओ एलेक्जेण्डर ! हमारे समक्ष किसी का भी अस्वागत नहीं ।

सेनापति सेल्यूकस—परम श्रद्धेय ! आप तो जानते ही हैं, निकाडोर एलेक्जेण्डर भारत-विजय के लिये पधारे हुए हैं—वे चाहते हैं कि आप आशीर्वाद दें कि उनका अभियान सफल हो ।

महर्षि दाण्ड्यायन—यह मैं नहीं जानता, यह बात विष्णुगुप्त चाणक्य जानता है ।

सम्राट् एलेक्जेण्डर—(विष्णुगुप्त चाणक्य को देखकर)-आप ? आप राजनीति में समझते हैं क्या, ब्राह्मण देव !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(सस्मित)—मैं केवल यही जानता हूँ कि पराजय कैसे दी जाती है, यवन नरेश ! और मेरा यह शिष्य मौर्य्य चन्द्रगुप्त यह जानता है कि जय-लाभ कैसे होता है ।

सेनापति सेल्यूकस—तब तो अच्छा सुयोग है, आदरणीय सम्राट् !

सम्राट् एलेक्जेण्डर—(स्थिर देखकर)—ठीक है । कृपा कर अपने गुरुदेव से हमारी ओर से विनय कीजिये कि वे हमें आशीर्वाद दें ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यवन सम्राट् ! चाणक्य सम्राटों के लिये आशीर्वाद नहीं, राजमुकुट या तलवार लाया करता है । (हँस कर) आशीर्वाद से मुक्ति मिलती है, अलक्षेन्द्र ! भारतवर्ष नहीं ।

सेनापति सेल्यूकस—साधुदेव! आपका यह शिष्य क्या कह रहा है?

महर्षि दाण्ड्यायन—चाणक्य जो कह रहा है, वह भारतवर्ष की विधि कह रही है। जय मेरे पास नहीं; मेरे पास कल्याण है—चाहते हो?

सम्राट् अलक्षेन्द्र—मैं भारत-विजय की कामना करता हूँ, साधुदेव आशीर्वाद दीजिये।

महर्षि दाण्ड्यायन—जय का आशीर्वाद मैं दे चुका हूँ, और पराजय के लिये मेरे पास आशीर्वाद नहीं है। भारतवर्ष का कल्याण मेरे पास है, परन्तु उसकी विधि...।

सेनापति सेल्यूकस—वह किसके पास है, श्रद्धेय!

महर्षि दाण्ड्यायन—यह चाणक्य जानता है कि वह किसके पास है। (शान्त भाव से प्रस्थान करते हैं)

सम्राट् एलेक्जेण्डर—ब्राह्मणदेव! आपसे मिल कर हम प्रसन्न हुए। अब और कहाँ मिलेंगे?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(मुस्कुराकर)—आप जहाँ चाहें, जैसे चाहें। सिन्धु या झेलम के तटों पर; सघन-वन में या ग्राम में—राजप्रासाद में या राजमार्ग पर। चिन्ता न करें अलक्षेन्द्र! अपने भारतवर्ष को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। याद करने के पहले ही मैं आपसे मिल जाऊँगा।

सम्राट् एलेक्जेण्डर—धन्यवाद, ब्राह्मणदेव!

(सहसा एक अजगर कुमारी हेलन के पास दिखाई देता है)

कुमारी हेलन—(भयभीत चिल्ला कर)—पिता !! (अर्ध-मूर्च्छित)

चन्द्रगुप्त मौर्य—क्या हुआ—(अजगर को देख कर)-ओह ! (त्वरा और फुर्ती से खड्ग द्वारा अजगर के टुकड़े कर देता है)

सेनापति सेल्युकस—सम्राट् ! बेटी मेरी ! हेलन ! बेटी ! (अर्धमूर्च्छित हेलन को बाहुओं पर थाम लेता है)

सम्राट् एलेक्जेण्डर—शाबाश, वीर युवक !

सेनापति सेल्यूक्स—आपका बहुत-बहुत आभार ! आपने मेरी प्राणप्रिय पुत्री के प्राणों की रक्षा की है। चिरकृतज्ञ रहूँगा मैं आपका।

सम्राट् एलेक्जेण्डर—निस्संदेह सेल्यूक्स ! आप ही नहीं, हम सब इस वीर भारतीय क्षत्रिय के आभारी हैं। (मुस्कुराकर) आपके इस आभार के प्रत्युत्तर में हम आपको अपना मेहमान बनाना चाहते हैं। क्यों महाशय चाणक्य ? क्या हम ऐसा नहीं कर सकते ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—क्यों नहीं ? वत्स चन्द्रगुप्त ! जाओ, यवन-नरेश के इस अनुग्रह को कुशलता के साथ सफल करो।

चन्द्रगुप्त मौर्य—जैसी गुरुदेव की आज्ञा। आपके इस अनुग्रह के लिये मैं आपका अभिवादन करता हूँ—चलिये।

कुमारी हेलन—(जाग्रत होती हुई)—मैं, कहाँ हूँ—पिता ?

चन्द्रगुप्त मौर्य—अब कोई भय नहीं है।

सेनापति सेल्यूकस— (पीठ सहलाता हुआ)–स्वस्थ हो जाओ, बेटी ! इस वीर उदार भारतीय युवक ने तुम्हें और हमें एक

भीषण आपत्ति से उबार लिया। सम्राट् ने प्रसन्न होकर इनको अपना मेहमान बनाया है। इनका आभार मानो, पुत्री !

कुमारी हेलन—(लजाती हुई)—आपकी बड़ी दया हुई, महाशय !

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(सस्मित)—वह मेरा कर्तव्य था—अपना प्राण देकर भी मुझे उस विषम विपदा को पराजित करना पड़ता, तो करता—मुझे उसमें बहुत सुख मिलता।

सम्राट् एलेकजेण्डर—बहादुर ! चलो, प्रिय सेल्यूकस ! भारतभूमि बड़ी विचित्र लगती है। इसके ब्राह्मण को देखा; क्षत्रिय को भी देखा और सबसे बड़े साधु को भी। अब इसकी रणभूमि को भी देखना है। (हँसकर) वह हम अच्छी तरह देख लेंगे। अच्छा, विदा ! ब्राह्मण देव ! फिर शीघ्र ही भेंट होगी।

(आगे २ सम्राट् एलेकजेण्डर और पीछे २ चन्द्रगुप्त मौर्य्य सहित सबका प्रस्थान। विष्णुगुप्त चाणक्य ज्यो का त्यों खड़ा रहता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—भारत विजय ! (चक्कर काटकर) सम्राट् अलक्षेन्द्र !! अच्छा ! देख लूंगा, विधाता ! (धीरे २ प्रस्थान करता है।)

दृश्य—दूसरा

[गान्धार और यवन शिविर के पास का एक एकान्त मार्ग। गान्धार-नरेश और उनके मुख्य मंत्री का प्रवेश। पीछे से विष्णुगुप्त चाणक्य और सिंहरण।]

महाराज आम्भीक—(उत्तेजित, किन्तु खड़ा रहकर)—हमने कह दिया पञ्चनद हमारा है, गान्धार का! सिन्धु और झेलम जिस सीमा तक आर्यावर्त का सिंचन करती हैं उस सीमा तक की पृथिवी हमारी है। (अट्टहास करके) अब पता चलेगा घमण्डी पर्वतेश्वर तुमको, कि हम क्या हैं! महाराज आम्भीक से लोहा लेना हँसी-ठट्ठा नहीं है! (हाथ मसलकर) रजनीगन्धा का पाणि-ग्रहण न करोगे? तुम क्या सारा पञ्चनद हाथ जोड़कर रजनी-गन्धा का हाथ हमारे हाथ में देगा!

मुख्य-मंत्री—यह तो है ही, महाराज! किन्तु—

महाराज आम्भीक—(इसी तरह उत्तेजित)—किन्तु क्या? किन्तु-परन्तु कुछ नहीं। हमें सब ज्ञात है—हम सब समझते हैं। हम कहें वह करते जाइये—फिर देखिये, किस सुगमता से हम पश्चिमोत्तर भारतवर्ष के अधिपति बन जाते हैं। आप देखते नहीं? सम्राट् मान्यवर अलक्षेन्द्र के हम कितने निकट चले गये हैं? किस कुशलता से इस महान् तेजस्वी यवन-सम्राट् को हमने अपना बना लिया है।

मुख्य-मंत्री—यह तो है ही।

महाराज आम्भीक—यही नहीं, हमारे प्रति उनका कितना सौहार्द है ! किस सौजन्य से वे हमसे भेंट करते हैं ! इसे कहते हैं गुण ग्राहकता,पुरुषार्थ और वीरता । आज हम उनकी मन्त्रणा-परिषद् में उनके सर्वोच्च विश्वस्त सेनापतियों और मंत्रियों के साथ बैठते हैं । यह क्या कम सम्मान है ?

मुख्य-मंत्री—इसमें क्या शक है ? महाराज ने जिस बुद्धि-मत्ता और दीर्घ दृष्टि से काम लिया है, उससे गान्धार महान् होकर रहेगा, फिर आचार्य चाणक्य कुछ भी कहें ।

महाराज आम्भीक—(उसी तरह)—आचार्य चाणक्य ? आचार्य चाणक्य ! क्या कहते हैं वे ? (चक्कर काटकर, झुँझला कर) इस मनस्वी मतिमान ब्राह्मण ने हमें तंग कर रक्खा है ! कबतक सहते रहें हम उसकी इस प्रतारणा को ? नहीं ! (तनकर) हम आदेश देते हैं, अब यदि आचार्य गान्धार एवं यवन-शिविर की सीमा में पैर रक्खें तो... ।

(सहसा विष्णुगुप्त चाणक्य और सिंहरण का प्रवेश)

मुख्य-मंत्री—(घबड़ाकर)—कौन ? आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ, मैं । क्यों ?

महाराज आम्भीक—आचार्य ! आप उल्टे पाँव लौट जाइये; अन्यथा ... ।

विष्णुगुप्त चाणक्य— (बीच ही में) — अन्यथा महाराज आम्भीक मुझे बन्दी बना लेंगे, क्यों ? (मुस्कुराकर) यवनों को समृद्ध और शक्तिशाली बनाने की अपेक्षा मैं आपका बन्दी

बनना कहीं अधिक पसन्द करूँगा।

महाराज आम्भीक—तभी मौर्य्य चन्द्रगुप्त यवन-शिविर में भारतीय मेहमान बन कर गया है! (हँसकर) उपदेश देने से बढ़ कर सरल उपाध्याय-वृत्ति और क्या हो सकती है, आचार्य?

विष्णुगुप्त चाणक्य—गान्धार नरेश! ब्राह्मणत्व के प्रति व्यंग करने के पूर्व अपने क्षत्रियत्व के प्रति भी कुछ कहते! यवन-तलवार के साथ मेरी पुस्तक नहीं, आपकी तलवार उठी है—यह भारतमाता के कलेजे को काटकर रहेगी। आप समझते क्यों नहीं? जो स्वयं विश्वविजेता का स्वप्न लेकर आँधी के समान मँडरा रहा है, आम्भीक! क्या वह आपके सपने की चिन्ता करेगा?

महाराज आम्भीक—यवन-सम्राट् को हम आपसे अधिक जानते हैं, आचार्य! आज इतने मास बीत गये, हम उनके साथ उठते-बैठते हैं—खाते-पीते हैं। हम समझते हैं, मतिमान, उदार, सहृदय, वीरत्व-प्रेमी और गुणग्राही यवन-सम्राट् क्या हैं। गान्धार के उत्कर्ष से आपको इतना द्वेष क्यों हैं, चाणक्य?

विष्णुगुप्त चाणक्य—भारतवर्ष का उत्कर्ष कहो, महाराज आम्भीक! भारत के साथ और अन्तर्गत गान्धार का उत्कर्ष पढ़ो—समझो! (सस्मित) अभी महात्वाकाँक्षी युवक हो; अनुभवी प्रौढ़ हो जाओगे, तब मेरा रहस्य समझोगे। अपने आचार्य की बात मान लो।

महाराज आम्भीक—मैं गान्धार को जानता हूँ—बस।

और किसी को नहीं। मैंने कह दिया।

विष्णुगुप्त चाणक्य—ठीक है; किन्तु मैं इस विशाल भारतवर्ष और उसकी सनातन महान जनता को ही जानता हूँ। मुझे गान्धार नहीं दीखता; पञ्चनद नहीं प्रतीत होता—मुझे भारतवर्ष ही दीखता है। आम्भीक अच्छे सम्मोह के वशीभूत होकर आत्म-द्रोह क्यों करते हो? तुम कहते हो, तुम यवन-सम्राट् को अच्छी तरह जानते हो? नहीं। मुझे इस दुर्धर्ष और सम्मोही यवन-नरेश के मन्तव्य की राई-रत्ती ज्ञात है। उसकी सेना,सेनापति,उसकी योग्यता,रण-कौशल और व्यूह और सर्वोपरि अलक्षेन्द्र की असोम यवन-पिपासा का मुझे भी पता है। जो महर्षि दाण्ड्यायन से सम्राट् होने का आशीर्वाद माँग चुका है, वह विजयी होने के बाद तुमको पञ्चनद देगा? पश्चिमोत्तर भारतवर्ष तुम्हें देगा?

महाराज आम्भीक—हमारी उनसे विधिवत् सन्धि हो चुकी है।

विष्णुगुप्त चाणक्य— कलम से लिखी गई सन्धियों के विजेता की तलवार टुकड़े कर डालती हैं। वनराज का वृषभ से क्या मेल? (सिर हिला कर) नहीं, आम्भीक नहीं! रस-रंग के आदी कूटनीति का सार अनुभव नहीं कर सकते। और मुख्य-मंत्रीजी! आप तो वयोवृद्ध अनुभवी विचक्षण हैं। अपने महाराज को समझाते क्यों नहीं कि झेलम के युद्ध में अलक्षेन्द्र गान्धार की वाहिनी को हरावल में ही कटवा देगा। उस समय अपने आचार्य को याद करोगे।

मुख्य-मंत्री—यथार्थ वचन है, आचार्य! परन्तु... ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—परन्तु क्या? पञ्चनद-पति का अभिमान चूर्ण करना है न? तो लो, मेरा यह आज्ञांकित, विश्वस्त परम प्रिय शिष्य मालव सिंहरण राजेश्वर पौरव की राजकुमारी रजनीगन्धा को महाराज के लिये ले आने का वचन देता है। तत्पर और प्रतिश्रुत हो न, सिंहरण!

सिंहरण—आ-आचार्य! (सँभल कर) जैसी आज्ञा! गान्धार और भारतवर्ष के उत्कर्ष के लिये आचार्य की आज्ञा हो तो मैं अपना सिर भी काट कर दे सकता हूँ।

महाराज आम्भीक—रजनीगन्धा! अच्छा। (चक्कर काटता है, फिर खड़ा रह कर) मान लीजिये, हम आपकी बात और मालव सिंहरण के वचन पर विश्वास कर लें, तो हमें प्रतिदान में क्या करना होगा?

विष्णुगुप्त चाणक्य—कुछ नहीं। राजेश्वर पौरव की पुत्री रजनीगन्धा देवी के साथ सानन्द विवाह करना होगा। और (पास आकर) जहाँ हो, वहीं स्थिर खड़ा रहना होगा।

महाराज आम्भीक—मतलब?

विष्णुगुप्त चाणक्य—केवल इतना ही कि झेलम के युद्ध में गान्धार की वाहिनी मेरे इंगित को स्वीकार कर चलेगी।

महाराज आम्भीक—आपका इंगित? हूँ! (चक्कर काट कर) समझा। (खड़ा रह कर) किन्तु आचार्य! यवन-सम्राट् के साथ हम विश्वास-घात नहीं कर सकते। वृहत्-गान्धार का हमारा

मनोरथ क्या होगा, आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—मूर्ख हो! अपना हित भी पूरा नहीं दीखता ? तुम्हारा आचार्य अपने गान्धार के प्रति क्या कभी विश्वासघात करेगा ? रजनीगन्धा का पद्म-पाणि तुम्हारे मनोरथ का प्रारम्भ होगा, आम्भीक !

महाराज आम्भीक—ओह !

विष्णुगुप्त चाणक्य—जाओ, वत्स सिंहरण ! धैर्य्य और साहस के साथ जाकर सुश्री रजनीगन्धा से कहो, तुम्हें तुम्हारे मनस्वी आचार्य ने याद किया है। पृथ्वी पाने से जीवन वैभवशाली होता है, आम्भीक ! किन्तु प्रियतम वस्तु की प्राप्ति से क्या प्राप्त नहीं होता ? (मुस्कुराना)

सिंहरण—आचार्य की जय हो ! मैं अभी चला। (प्रस्थान)

विष्णुगुप्त चाणक्य—आचार्य की जय ! (चक्कर काट कर) नहीं। मैं हाथ उठा कर कहता हूँ सब द्रोह और स्वार्थ मिटा कर एक स्वर से सब कहें, मुख्य मंत्रीजी ! आप, मैं, महाराज आम्भीक—सब कहें, आर्यावर्त की जय ! (आम्भीक के पास जा उसके कन्धे पर हाथ रख कर) गान्धार की भूमि से कहीं अधिक सुखदायिनी पौरव-कन्या है। उसे प्राप्त कर सुखी हो जाओ, आम्भीक ! तुम्हारे विरह को तुम्हारा आचार्य जानता है। मैं हृदयहीन नहीं हूँ, वत्स ! जाओ, विश्राम करो और रजनीगन्धा की व्याकुल प्रतीक्षा में लीन हो जाओ—जाओ !

महाराज आम्भीक—आचार्य ! अच्छा। मुझे कुछ नहीं

सूझता । कहीं यवन-सम्राट् को इस भेद का पता... ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—हमारा कोई भेद ही नहीं । तुम्हारे मुख्य मंत्री मुख्य सेनापति और प्रधानामात्य होंगे और तुम्हारे मनोरथ को सिद्धि में लगेंगे । समझे । तुम्हें कुछ नहीं सूझता; किन्तु मुझे सब सूझता है । जाओ, विश्राम करो । (महाराज आम्भीक धीरे २ जाते हैं)

मुख्य-मंत्री—धन्य हैं आप, आचार्य-श्रेष्ठ ! मैं मुख्य सेनापति और प्रधान मात्य ! (निसास के साथ) पूज्य ! महाराज को मैंने बहुतेरा समझाया, परन्तु... ।

विष्णुगुप्त चाणक्य— आपका देशप्रेम मुझे ज्ञात है । आप चिन्ता न करें । पञ्चनद ही नहीं, पश्चिमोत्तर भारत का संघ बनेगा। उस समय आपके समान वीर, अनुभवी और देशप्रेमी व्यक्ति ही तो आगे आयेंगे । आप तो जानते हैं, अवसर आते नहीं, लाये जाते हैं । विग्रह से जुड़े हुए अवसर लुप्त हो जाते हैं, सन्धि से लुप्त अवसर जाग्रत हो जाते हैं । आप जाकर अभी आम्भीक के व्याकुल मन में यह बात उतारिये । मैंने प्रारम्भ किया है, अन्त आप कीजिये । क्यों ?

मुख्य-मंत्री—अवश्य आचार्य! शेष मैं कुशलता से सम्पन्न कर लूँगा । (जाने लगता है)

विष्णुगुप्त चाणक्य—मेरा इंगित, मुख्य मंत्रीजी ! समझे ? 'आचार्य की जय !' सिंहरण रजनीगन्धा को लेकर आने में ही है ।

मुख्य-मंत्री—समझ गया। आचार्यदेव ! आपकी निश्चय ही विजय होगी। प्रणाम—साष्टांग प्रणाम ! (नम्रता पूर्वक प्रणाम कर प्रस्थान)

विष्णुगुप्त चाणक्य—रजनीगन्धा और सिंहरण—पञ्चनद और मालव ! लो, वे दोनों 'एक हृदय दो, शरीर' आगये।

(सिंहरण का रजनीगन्धा के साथ प्रवेश)

रजनीगन्धा—आचार्य को मेरा प्रणाम स्वीकार हो। मुझे अभी सत्वर याद किया ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ, बेटी ! तुम्हारा आचार्य आवश्यकता होने पर सभी को याद किया करता है। परिश्रान्त तो नहीं हो, बेटी ?

रजनीगन्धा—नहीं पूज्य ! पञ्चनद और आर्यावर्त के लिये मुझे मृत्यु भी प्रिय है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—तुम्हारी अपूर्व सौम्यता और अप्रतिम देश-भक्ति ही तुम्हारा शृंगार है। (सस्मित) महाराज आम्भीक न जाने कब से तुम्हारी राह देख रहे हैं।

रजनीगन्धा—(कुछ उदास पर सोत्साह)—आर्य सिंहरण ने मुझे आपका मर्म बता दिया है। उत्सर्ग, जीवन का—उसके सम्पूर्ण स्वप्नों, कामनाओं और सुखों का। यही न पूज्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ। अभी तो यही। अलक्षेन्द्र की पराजय तक तुम महाराज आम्भीक के परिणय में रहोगी। महाराज आम्भीक को अपनी रूप-राशि में डुबो दो और मुग्ध

कर माँग लो, सिंहरण गान्धार-वाहिनी का बलाध्यक्ष, मुख्यमंत्री मुख्य-सेनापति, और मेरा इंगित अन्तिम निर्णायक। (हँसकर) मैंने तुमको महाराज आम्भीक की वाग्दत्ता बना दिया है। क्यों सिंहरण! स्थिर और तत्पर हो न?

सिंहरण—समस्त जीवन की आशा का उत्सर्ग! मैं यही आपके श्री चरणों में बैठ कर सीखा हूँ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यथार्थ है। तो तुम स्वयं महाराज आम्भीक तक रजनी को पहुँचा आओ। तब तक मैं तुम्हारी यहीं प्रतीक्षा करूँगा।

सिंहरण—जैसी मेरे आचार्य की आज्ञा! चलो, रजनीगन्धा!

(रजनीगन्धा को लेकर सिंहरण का धीरे २ प्रस्थान)

विष्णुगुप्त चाणक्य—सिद्धि! चाणक्य अर्थात् सिद्धि!! (चक्कर काट कर) महाराज आम्भीक, तुम्हें जीवित रहने का क्या अधिकार है? (खड़ा रह कर) नहीं, तुम जी नहीं सकते। झेलम-युद्ध की उत्तुंग विजय-पताका के शिरोरुह पर तुम्हारा मस्तक—कौन है?

(चर का त्वरा से प्रवेश)

चर—(प्रणाम कर)—आचार्य की जय हो!

विष्णुगुप्त चाणक्य—जय! कह, क्या बात है? झेलम?

चर—झेलम के उस पार से प्रतिदिन एक तीर आयगा।

विष्णुगुप्त चाणक्य—ठीक है। चन्द्रगुप्त से मेरा आशी-

बाँद कहना और कहना सतर्क रहे। युद्ध प्रारंभ हुआ ही समझो। तब उसे इस पार आना है।

चर—जैसा चरणों का आदेश!

विष्णुगुप्त चाणक्य—अपने अन्य दलों से कहो, निद्रा और इन्द्रियों पर वश रख कर प्रतिपल समाचार हमें पहुँचाते रहें। जाओ।

चर—आचार्य की जय हो! (प्रस्थान)

विष्णुगुप्त चाणक्य—पिप्पलीकानन के सधे हुए सैनिक गुल्म; विद्रोही गान्धार-प्रजा, छलनामयी गान्धारवाहिनी, पञ्चनद की थिरकती हुई वीर चतुरंगिणियाँ, चन्द्रगुप्त, सिंहरण और मोहक रजनीगन्धा। बता, अविराम झेलम! तेरा युद्ध अब भी असफल होगा?

(सिंहरण का पुनः प्रवेश)

सिंहरण—आचार्य! रजनीगन्धा को विदा कर आया। ओह! आचार्य! मेरे आचार्य! (दुःख के मारे सिर पकड़ लेता है)

विष्णुगुप्त चाणक्य—सिंहरण! तुम्हें देखता हूँ तो विन्ध्याचल के समान मुझे अपनी युवावस्था याद हो आती है। मेरे शान्त साकार वीरत्व सिंहरण! आज सचमुच तुमने रजनीगन्धा को पालिया।

सिंहरण—(हठात्)—आचार्य चरण?

विष्णुगुप्त चाणक्य—उठी हुई तलवारों की चमक और युद्धोन्माद में डूबे हुए हाथियों की चिंग्घाड़ें झेलम की सनातन

वारिधारा की कोमलता क्या जाने ? निस्वार्थ और एकान्त त्याग ही प्रिय को पाने का अचूक मार्ग है । (हँसकर) बलाध्यक्ष होकर युद्ध में इतने प्रवृत्त मत हो जाना कि अपने प्रिय के शील की रक्षा करना भी भूल जाओ। तुम्हारी प्रिय रजनीगन्धा मेरे पास तुम्हारी अमानत है। उसके शरीर और शील की रक्षा करना तुम्हारा दायित्व है। मुझे कह लेने दो, वत्स! जीने का और रजनी को पाने का अधिकार तुम्हारा है; देश-द्रोही कुलांगार आम्भीक का नहीं। (धीरे २ प्रस्थान)

सिंहरण—(हक्का-बक्का सा)— ओह — अब समझा । आचार्य! मेरे आचार्य, तुम्हारी जय हो! रजनी, मेरी प्राणेश्वरी! झेलम, तुम्हारे तटों का गौरव चिरन्तन होगा— निस्संदेह! (उत्साह पूर्वक प्रस्थान)

दृश्य—तीसरा

[झेलम-तट का एक महत्वपूर्ण यवन शिविर-भाग। फिलिप, सेल्यूकस और एलेक्जेण्डर का प्रवेश]

फ़िलिप—(रुककर)—फिर जैसी मतिमान सम्राट् की आज्ञा।

एलेक्जेण्डर—हम झेलम पार करेंगे। हमारी यही आज्ञा है।

सेल्यूकस—किन्तु सम्राट् ! झेलम को सीधा पार करना कठिनतम् है। सामने हाथियों की प्राचीरें खड़ी हैं और अचूक भारतीय तीर हमारा अचूक निशाना बना रहे हैं।

फ़िलिप्स—जी ! वह क्षत्रिय भारतीय युवक मौर्य्य चन्द्रगुप्त क्या कहता है ?

सेल्यूकस—मैं सेनापति महापात्र फ़िलिप महोदय के कथन का अर्थ न समझ पाया।

फ़िलिप—मेरा अर्थ स्पष्ट है, परम माननीय सम्राट् ! महापात्र सेल्यूकस उस भारतीय क्षत्रिय का बड़ा सम्मान करते हैं, क्योंकि कुमारी हेलन को वह भारतीय संगीत और चित्र-कला सिखाता है। परन्तु मुझे शक है कि वह विचक्षण भारतीय अपने देशवासियों से मिला हुआ है। मैं उस भूदेव चाणक्य की स्थिर अगाध आँखें स्वप्न में भी नहीं भूलता।

सेल्यूकस—मैं आपसे सहमत नहीं हो सकता महाशय फ़िलिप ! पुत्री हेलन और मेरा विश्वास है, मौर्य्य चन्द्रगुप्त पूर्ण विश्वस्त युवक है। आप भूल जाते हैं, फ़िलिप महोदय, वह अपने निमंत्रण से अपना मेहमान है।

फ़िलिप—समस्त यूनान जानता है, मेरा और आपका मत नहीं मिलता। अभय ! सम्राट् ! कुमारी हेलन का अतिशय कृपापात्र होकर यह भारतीय युवक कहीं अपने शिविर-भेद तो उस अत्यन्त घाघ ब्राह्मण को नहीं भेजता ? मेरा निश्चित मत है, युद्ध के अन्त तक हमें इस भारतीय को बन्दी बना कर

रखना चाहिये। (स्मित के साथ) जिससे हम निरापद हो जाय और कुमारी हेलन को निश्चिन्त होकर भारतीय चित्रकला, संगीत और दर्शन जानने का अबाध अवसर उपलब्ध हो जाय।

एलेक्जेएडर—ठहरो! हम विचार कर रहे हैं। हम शीघ्र ही निर्णय देंगे। तबतक सेल्यूक्स! चन्द्रगुप्त पर कड़ी निगाह रक्खो।

सेल्यूकस—परन्तु सम्राट्! वह हमारा मेहमान है।

फिलिप्स—और कुमारी हेलन के लिये वह क्या है?

सेल्यूकस—(आग होकर)—सम्राट्! यह मेरा, मेरी पुत्री और मेरी जातीयता का अपमान है। मैं न्याय माँगता हूँ, सम्राट्!

एलेक्जेएडर—शान्त हो जाओ, सेल्यूकस! फ़िलिप! मेसेडोनियन ग्रीक ग्रीक-महिला का सम्मान करना जन्म से ही जानता है। कुमारी हेलन यूनान की शोभा और सौन्दर्य हैं—उनका सम्मान हमारा सम्मान है। अपने शब्द वापस लो।

फ़िलिप्स—(झुककर)—अभय! सम्राट्!

एलेक्जेएडर—दिया!

फिलिप—सम्राट् के मान्य आदेश से मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ। परन्तु—परन्तु किसी दिन प्रमाणित कर दूँगा।

सेल्यूकस—द्वन्द्व-युद्ध! सम्राट्, मैं सह नहीं सकता—द्वन्द्व-युद्ध!! (तलवार पर हाथ डालता है)

एलेक्जेएडर—नहीं! युद्ध पञ्चनद से होगा—झेलम की

असंख्य गहरी लहरों से द्वन्द्व-युद्ध करो, सेल्यूकस ! उधर देखो, झेलम की उपत्यका के उस पार, जहाँ यूनान का झण्डा लहराने के लिये आज महीनों से मचल रहा है। तुम्हारा निकाडोर एलेक्जेण्डर कहता है-अश्वों और हाथियों की प्राचीरें भेद कर आगे बढ़ो और शेर की तरह टूट पड़ो इन ज़िद्दी भारतीयों पर ! अपने शिविर में अपना बन्दी वह भारतीय कर क्या सकता है ? हम आज रात्रि के अन्धकार में झेलम की उद्धत तरंगों पर विजय प्राप्त करेंगे—उधर देखो, तुम्हारा शत्रु तुम्हारी जातीयता को ललकारता हुआ अहंकार से मस्तक उठाये खड़ा है। कुचल दो उसका वह गर्वोद्धत सिर !

(सहसा एक तीर आकर एलेक्जेण्डर के पैरों के पास गड़ जाता है।)

फ़िलिप्स—पितृदेव ! (त्वरा से तीर खींच लेता है।)

सेल्यूकस—लगा तो नहीं। कुलदेवता, तुमने रक्षा की।

फ़िलिप्स—पत्र लिपटा है। (त्वरा से पत्र खोलकर पढ़ने लगता है।)

सेल्यूकस—हमारा सबका धन्य भाग्य। पितृदेव महाराज फ़िलिप का अजय पुण्य प्रताप कि सम्राट् का बाल भी बाँका न हुआ।

फ़िलिप्स—(पत्र पढ़कर)—यह लीजिये सम्राट् ! मेरा प्रमाण ! चन्द्रगुप्त भाग गया है शिविर छोड़कर। यह उसी का पत्र है

एलेक्जेण्डर—(दाँत पीसकर)—क्या लिखा है ! ओह ! (पैर पटकता है)

फिलिप्स—(सव्यंग)—सुन लीजिये, महाशय सेल्यूकस ! (पढ़ता है) "धन्यवाद ! आपकी मेहमानदारी के लिये उपकृत हूँ—अब झेलम के उस पार तलवारों के बीच भेंट होगी—चन्द्रगुप्त"

सेल्यूकस—(सिर झुकाकर)—अभय, सम्राट् ! मुझे सख्त अफ़सोस है। मैं शर्मिन्दा हूँ।

एलेक्जेण्डर—(उत्तेजित मुट्ठी भींचकर)—भागकर जाओगे कहाँ तुम चन्द्रगुप्त ? यूनान की अगणित तलवारें तुम्हारे शरीर का अंग २ काट डालेंगी। जाओ झेलम को सुखादो, जलादो पञ्चनद को—हम आदेश देते हैं। काट डालो, जो सामने आये। व्यूह हम स्वयं देखेंगे।

सेल्यूकस—अभय सम्राट् !

एलेक्जेण्डर—दिया, अब जाओ—हम अभी इसी समय झेलम पार करेंगे। लोमहर्षक रणवाद्य बजवादो—यूनान, मिश्र, बेबीलोन, सीरिया और घमण्डी हिन्दुकुश हमारे पैरों पर आ गिरे; काँप उठी धरती हमारे पादाघात से ! तब सिर उठाकर खड़ा हुआ है यह उद्धत मूर्ख पञ्चनद का राजा पौरव ! हम उसे खाक में मिला देंगे। हमारे सामने तलवार लेकर आने वाले की हम आखें निकाल लेंगे; उसकी अँतड़ियाँ उलट देंगे; उसे हम मिट्टी में मिला देंगे—जाओ, यूनान का झण्डा उठा लो और आँधी और तूफान की तरह धँसो-आगे—झेलम के उस पार—जाओ !

फिलिप्स—निकाडोर एलेक्जेण्डर ज़िन्दाबाद !

सेल्यूकस—विजय! यूनान की, उसके विश्वविजेता महान् सम्राट् की सदैव विजय!!

एलेक्जेण्डर—(तलवार निकाल कर)—भाग्य और विधाता! निकाडोर एलेक्जेण्डर हिन्दुस्तान के साथ तेरे घुटने भी तोड़ देगा—जय!! (अट्टहास) यह भारतवर्ष हमारा है—हमारा। हम देखते हैं, महर्षि, तुम, वह ब्राह्मण चाणक्य और यह राजा क्या कर सकता है? (पैर पटक कर) हमरी ये लोहानी एड़ियाँ पीस देंगी एक एक को—सब को! पीस देंगी—(त्वरा से प्रस्थन करता है; पीछे २ फिलिप्स और सेल्यूकस जाते हैं।)

दृश्य—चौथा

[झेलम की रण-भूमि का एक भाग। सुदूर कोलाहल और चीत्कार हो रहा है]

(युद्ध-वेश में पर्वतेश्वर, सेनापति, महामंत्री तथा नायकों का प्रवेश)

पर्वतेश्वर—(खड़ा रह कर)—नहीं! पीछे नहीं, हम आगे बढ़ेंगे। हमारी रण-शय्या तैयार कराओ। प्राणों में प्राण रहेंगे, तबतक हम यवन-मस्तक काटते रहेंगे। हमने कह दिया।

सेनापति—धन्य, महाराज! किन्तु निरंतर बढ़ते हुए शत्रु-दबाव को कम करना ही होगा।

पर्वतेश्वर—अन्तिम धावा बोल दो। प्रत्येक पञ्चनद के वीर से कह दो, उसका कबन्ध लड़े। टुकड़े-टुकड़े हो जाओ, परन्तु खड्ग नीचे मत रक्खो। (चक्कर काट कर) और क्या चारा है अब ?

महामंत्री—मौर्य्य चन्द्रगुप्त से भी राय लेली जाय, परममान्य !

पर्वतेश्वर—हमने उसकी राय सुन ली है। वह क्या राय देगा हमें ? रण-व्यूह हम जानते हैं। विद्यु त्-वेग से कड़कड़ा कर शत्रुओं पर टूट गिरो। पञ्चनद का आबालवृद्ध कट जाय, परन्तु रणभूमि न त्यागे—यही हमारा निर्णय और आदेश है, सेनापति !

सेनापति—जैसी परम रणधीर की आज्ञा। (प्रस्थान)

पर्वतेश्वर—हमारा रुधिर यवनों को डुबो देगा।

महामंत्री—विजय पञ्चनद की ही होगी, महाराज ! विश्वास रक्खें।

पर्वतेश्वर—जय-विजय के परे सम्पूर्ण उत्सर्ग और वीर-गति की यह उन्मत्त रण-वेला है। पञ्चनद की भूमि माता ने हमें उत्पन्न किया, हम उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए तिल-तिल कट कर समा जायँगे। हम वीर-गति प्राप्त करेंगे। कौन ? आचार्य !

(विष्णुगुप्त चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य्य का प्रवेश)

विष्णुगुप्त चाणक्य—राजेश्वर की जय हो !

पर्वतेश्वर—हमारी जय ? आचार्य ! यह कैसा आशीर्वाद ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—राजेश्वर ! आज सबसे पहले मैंने आपकी जय कही है। दुर्धर्ष वेग से अलक्षेन्द्र की हरावल पर आप स्वयं सीधे टूट पड़ो। मौर्य्य चन्द्रगुप्त और मालव सिंहरण आपके दोनों पार्श्व में रहेंगे—(हँसकर) गान्धार और पञ्चनद की लक्षावधि प्रजाएँ आपकी रणचण्डी असिधारा की रक्त-तरंगें देखेंगी। निर्भय और निश्चिन्त होकर वीर-पुंगव! आगे बढ़ो और परिणाम विधाता पर छोड़ दो। यह काल-घड़ी है और मैं अविचल तबतक यहीं खड़ा हूँ जबतक राजेश्वर पर्वतेश्वर विजयी होकर आकर प्रणाम न करें।

पर्वतेश्वर—आपके आशीर्वाद ने मुझमें अपराजित उत्साह भर दिया। जय ! (तलवार निकाल कर मस्तक पर लगाता है और नायकों के साथ प्रस्थान करता है)

विष्णुगुप्त चाणक्य—वत्स चन्द्रगुप्त ! पर्वतेश्वर के साथ जाओ। महामंत्री ! आप भी। सावधान और सन्नद्ध होकर लग जाओ। सिंहरण को मेरा इंगित भेज दो। मैं कहता हूँ, झेलम-तट का यह युद्ध-कोलाहल और चीत्कार इतिहास के आकाश में सदैव गूँजता रहेगा। जाओ।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य की जय हो ! (महामंत्री के साथ प्रस्थान)

विष्णुगुप्त चाणक्य—विधाता ! (क्षितिज की ओर देखता रहता है)

(पुरुष-वेश में रजनीगन्धा का प्रवेश)

रजनीगन्धा—प्रणाम स्वीकार हो, पूज्य! मुझे याद किया?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(उसी तरह देखते हुए)— हाँ। मैं न जाने कब से तुम्हारी राह देख रहा था, बेटी! (घूम कर, एक कटार निकाल कर) इसे लो।

रजनीगन्धा—(साश्चर्य)—आचार्य? यह किस लिये?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(घूमकर)— देश-द्रोही कुलांगार आम्भीक के कलेजे के लिये। जाओ—गान्धार और पञ्चनद की प्रजाएँ आर्यावर्त-द्रोही आम्भीक का शव देख कर हर्षोन्मत्त हो उठेंगी और वारिधि के ज्वार के समान उमड़ कर यवन-लोथों को ओत-प्रोत कर देंगी! तब सिंहरण शंख फूँकेगा और तुम्हारे चपल-कुशल गुल्म यवन-वाहिनियों के पीछे बाज की तरह चिपक जायँगे। गर्वोद्धत यवन-शिविर में अग्नि-ज्वालाएँ झेलम की लहरों से होड़ करती हुई नाच उठेंगी! (अट्टहास)

रजनीगन्धा—(चुपचाप कटार लेकर)— आचार्य की जय हो!

विष्णुगुप्त चाणक्य—भारतवर्ष के भविष्य की जय कहो, बेटी! जाओ—सिंहरण की स्नेह-रेखा से मण्डित अपने पद्म-पाणि में यम-शक्ति के साथ यह कटार पकड़ो और मुग्ध दृष्टि के सम्मोहक वशीकरण में जकड़ कर, मधुर स्मित की छलना के साथ आम्भीक के कलेजे में इसकी विषमयी धारा पार करदो—चीर दो उसे, जाओ। (त्वरा से प्रस्थान)

रजनीगन्धा—(अर्ध-स्फुट स्वर में)—**सिंहरण!** (धीरे २ प्रस्थान करती है)

(पञ्चनद-सेनापति और यवन-सेनाध्यक्ष फ़िलिप का द्वन्द्व-युद्ध करते हुए प्रवेश)

पञ्चनद-सेनापति—(आघात कर)—**जय पञ्चनद !**

फ़िलिप्स—(आघात झेलता हुआ)—**जय यूनान !!**

पञ्चनद-सेनापति—(पुनः घात करते हुए)—**सावधान !**

फ़िलिप्स—(घाव खाकर)—**ओह— चिन्ता नहीं !** (आघात करता है)

(दोनों का युद्ध करते हुए एक ओर जाना। दूसरी ओर से सिंहरण और सेल्यूकस का द्वन्द्व-युद्ध करते हुए प्रवेश)

सिंहरण—(प्रहार करते हुए)—**सभी आम्भीक नहीं हैं, यवन !**

सेल्यूकस—(प्रहार से बचते हुए)—**सुकुमार हो—बचा रहा हूँ इसीलिये ! अन्यथा**— (सिंहरण के प्रहारों को व्यर्थ करने की चेष्टा करता है)

सिंहरण—**मैं सुकुमार हो सकता हूँ, यवन ! परन्तु**— (निर्णायक प्रहार की ताक लगा कर) **परन्तु मेरा खड्ग**—(प्रहार कर) **युवक है !**

सेल्यूकस—(घाव खाकर)—**इतना, इतना तीव्र प्रहार**— (सँभलकर भीषण वेग से सिंहरण पर प्रहार करने लगता है।)

सिंहरण—(प्रहार व्यर्थ करने की चपल और कुशल चेष्टा करते हुए)—**यवन ! मौर्य्य चन्द्रगुप्त का प्रखर खड्ग पीछे है**—

(नेपथ्य में जय गान्धार ! और जय पञ्चनद ! का कोलाहल होता है !)

सेल्यूकस—रुको ! तब सम्राट् घिर गये ?

सिंहरण—(रुककर)—हाँ ! राजेश्वर पर्वतेश्वर ने तुम्हारे निकाडोर पर सीधा आक्रमण कर दिया है और पिप्पलीकानन एवं मालव-वाहिनियाँ उनके पार्श्व में दबाव डाल रही हैं—(अट्टहास कर) भारत विजय करूँगा ! झेलम की चिरन्तन जल-धारा पर तो वश कीजिये, महाशय !

सेल्यूकस—असंभव !

सिंहरण—(पुनः अट्टहास कर)—असंभव ? नहीं, सर्वथा सत्य-संभव ! झेलम की रणभूमि में पश्चिमोत्तर भारत की असिधाराएँ एक हो गई हैं, महापात्र ! अपने सहस्रों हाथों में तीर, भाले, बल्लम, लाठी, जम्बूक, परशु लिये हुए पञ्चनद और गान्धार की प्रजा लपकी आ रही है और आगे आचार्य चाणक्य हैं।

सेल्यूकस—(हतोत्साहित होकर) — पितृदेव ! सम्राट् की रक्षा करो।

(नेपथ्य में "महाराज पर्वतेश्वर की जय !" के नारे। "राजराजेश्वर पञ्चनद-पति की जय !" का तुमुल कोलाहल सुनाई पड़ता है। एक ओर से एलेक्जेण्डर और पर्वतेश्वर का द्वन्द्व-युद्ध करते हुए प्रवेश)

पर्वतेश्वर—(प्रहार करता हुआ)—यह और अन्तिम !

एलेक्जेण्डर—(प्रहार से बचकर)—शाबाश !

पर्वतेश्वर—(ठिठक कर)—प्रहार कीजिये—मेरा कबन्ध तक लड़ेगा !

एलेक्जेण्डर—(सहसा)—नहीं ! धन्य, भारतीय वीर ! बस !

पर्वतेश्वर—यवन-नरेश ! प्रहार करो—नहीं क्या ? प्रहार माँगता हूँ ।

एलेक्जेण्डर—(मुस्कुरा कर)—प्रहार हो चुके; यूनान और पञ्चनद की चोटें हो चुकीं । सेल्यूकस ! हम महाराज पौरव की अप्रतिम-वीरता से परम प्रसन्न हुए हैं । हम आदेश देते हैं, यूनान और पञ्चनद की मैत्री के झण्डे लहरा दो ! (हाथ बढ़ाकर) वीरवर ! हम आपका किस प्रकार सम्मान करें ?

पर्वतेश्वर—(प्रसन्न किन्तु साभिमान)—जिस प्रकार एक राजा दूसरे राजा का करता है ।

एलेक्जेण्डर—हमें सहर्ष स्वीकार है ! सेल्यूकस ! महाराज पौरव हमारे समादृत वीर मित्र हुए । इनके सम्मान में यूनान की दुन्दुभियाँ बजवा दो ! (नेपथ्य में यवन-दुन्दभि बजती है ।)

(सहसा चन्द्रगुप्त मौर्य्य का रजनीगन्धा के साथ प्रवेश)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—महाराज ! मार्ग साफ़ और व्यूह निगड़ है—आगे बढ़िये ।

रजनीगन्धा—देशद्रोही कुलांगार गान्धार-नरेश मौत के घाट उतार दिया गया है । उसके लहूलुहान शव से ठोकरें खाते हुए सहस्रों भारतीय वीर विश्वविजय के इस दम्भी को घेर चुके हैं । युद्ध जारी रखिये, पिताजी ! हम यवनों को झेलम में जल-समाधि देंगे !

पर्वतेश्वर—बेटी ! तुम वीर पिता की वीर पुत्री हो ।

तुम अच्छी तरह जानती हो, हम कहा बोल नहीं बदलते। यवन-नरेश हमें अपना समान वीर मित्र और हम इनको अपना मित्र कह चुके हैं। युद्ध अब कैसे हो सकता है ?

एलेक्जेएडर—हम पञ्चनद की वीर राजकुमारी के तेज से अत्यन्त प्रभावित हुए। (मुस्कुरा कर) निकाडोर एलेक्जेएडर वीर पुंगवों का प्रेमी है, मित्र है, साथी है। हम आपके तेजस्वी पितृदेव को भारत-सम्राट् के रूप में देखना चाहते हैं।

पर्वतेश्वर—हम भारत-सम्राट् ?

एलेक्जेएडर—क्यों नहीं ? यदि हम अपने मित्र वीर-श्रेष्ठ क्षत्रिय-कुल-शिरोमणि राजेश्वर पर्वतेश्वर को भारत के सिंहासन पर बिठा न सके तो हमारी मित्रता का सार्थक्य ही क्या ?

पर्वतेश्वर—हमें विश्वास होगया कि अप्रतिम साहसी और वीर अलक्षेन्द्र वीरों के ग्राही हैं। युद्ध बन्द हो ! (नेपथ्य में पञ्चनद के वाद्य बजते हैं)

(सहसा विष्णुगुप्त चाणक्य का प्रवेश)

विष्णुगुप्त चाणक्य—पौरव ?

पर्वतेश्वर—आचार्य ! अलक्षेन्द्र हमारे मित्र हो चुके। आप गान्धार और पञ्चनद की प्रजा को शान्त कर दीजिये।

विष्णुगुप्त चाणक्य—किन्तु पौरव ?

एलेक्जेएडर—ब्राह्मण देव ! हमारे मित्र महाराज पौरव की ओर से हमारा आपको निवेदन है कि यूनान और पञ्चनद

की सम्मिलित वाहिनियाँ मगध की ओर कूच आरम्भ करदें। आप और आपके साहसी दृढ़ शिष्य भी इस अभियान में हमारी सहायता करें।

विष्णुगुप्त चाणक्य—समझा। पौरव ? क्या आप भी यही चाहते हैं ?

पर्वतेश्वर—अवश्य ! महापद्म के उस अत्याचारी बौद्ध जारज-पुत्र नन्द को भारी २ लोह-शृंखलाओं में जकड़ना होगा, आचार्य !

एलेक्जेण्डर—हमने निश्चय कर लिया है, ब्राह्मणदेव ! कि हमारे परम आदरणीय साथी महाराज पौरव जैसे वीरवर को भारत सम्राट् होना चाहिये। हम यह इनके लिये करेंगे।

विष्णुगुप्त चाणक्य—अलक्षेन्द्र ?

एलेक्जेण्डर—(मुस्कुरा कर)—श्रद्धेय अरस्तू ने हमें सिखाया है कि मित्र के उत्कर्ष के लिये अपना सर्वस्व लगा दो। आप समझे ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(सिर हिलाकर)—मौर्य चन्द्रगुप्त ! मालव सिंहरण! जब होनहार ने झेलम के युद्ध की इस प्रकार इतिश्री करदी है, तब हम कर ही क्या सकते हैं ? मगध ! पर्वतेश्वर, जब आप निश्चय कर चुके हैं तो ठीक है। चन्द्रगुप्त ! अलक्षेन्द्र के मित्र और साथी अपने वीरवर महाराज पर्वतेश्वर की सेवा अब इस समय से समस्त भारत भूमि के भविष्य और उन्नति की सेवा है—समझे, मालवसिंहरण !

अच्छा है। ठीक है—अलक्षेन्द्र ! चाणक्य सब का हित समझता है। (पौरव के कन्धे पर हाथ रखकर) महापद्म के जारज पुत्र नन्द का नाश करना है—यही न ?

पर्वतेश्वर—यही, आचार्य ! यही।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(मुस्कुराकर)—तब आगे बढ़ो; विधि के मार्ग में निर्विघ्न करूंगा।

(एलेक्जेण्डर और पर्वतेश्वर हाथ मिलाते हैं। तुमुल कोलाहल के साथ यूनान और पञ्चनद के जयघोष होते हैं)

पटाक्षेप।

दृश्य—पाँचवाँ

[यवन और पञ्चनद के संयुक्त शिविर के पास का एक एकान्त मार्ग। विष्णुगुप्त चाणक्य का विचारमग्न प्रवेश]

विष्णुगुप्त चाणक्य—(खड़ा रह कर)—पर्वतेश्वर— भारत-सम्राट् ? अलक्षेन्द्र और पर्वतेश्वर— मत्र और साथी ? अच्छा है; ठीक है। अलक्षेन्द्र ! पाशा तो कुशलतापूर्वक फैंका है। तुम समझते हो, यवन ! कि तुम सफल होंगे। पर्वतेश्वर को ममध के सिंहासन पर बिठाकर भारतवर्ष की बागडोर तुम अपने हाथ में रखना चाहते हो, क्यों ? अच्छा है।

(चन्द्रगुप्त मौर्य्य का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—प्रणाम स्वीकार हो, आचार्य ! मुझे याद किया, गुरुदेव !

विष्णुगुप्त चाणक्य—और किसे याद करूंगा ? यवन-राजकुमारी हेलन उदास सी क्यों दिखती हैं, मौर्य्य ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—क्षमा कीजिये, गुरुदेव ! मुझ से भूल हुई।

विष्णुगुप्त चाणक्य—हेलन को चित्रकला और संगीत सिखाते हुए भी तुमको अपना खड्ग याद रखना है—यही तुम्हारे आचार्य को कहना है। और सुनो ! रावी, व्यास और शोण के तटों को सावधान कर दो, समझे ? यवन-सैनिकों को पद-पद पर शूल मिलने चाहियें। पर्वतेश्वर को मैं सम्भालूंगा। मृत आम्भीक और इस राजेश्वर में अब भेद ही क्या रहा ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—तो क्या हम... ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हम पञ्चनद और यूनान के संयुक्त शिविर के पास हैं; साथ हैं। हवा भी सुनती है; और पाषाण भी बोलता है। रावी, शोण और व्यास तट तुम्हारे और सिंहरण के दायित्व में। शिविर मेरे। अब जाओ—चर को भेज दो।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—जैसी आज्ञा ! आचार्य की जय हो ! (प्रस्थान करता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य— (स्व कथन करता हुआ)—वही

नीला आकाश, वही शस्य श्यामल भूमि, जीर्ण-शीर्ण, त्रस्त अस्तव्यस्त वही भारत भूमि ! स्वार्थों से हीन और द्रोहों से छिन्न-भिन्न भारत मेखला ! (निःसास) झेलम, तुम्हारा एकान्त रुदन मुझ में उभर रहा है जैसे—तू मुझे अपने में समा-ले, भारत भूमि ! (चक्कर) महर्षे ? होनहार से मैं परास्त होता जाता रहा हूँ—(खड़ा रहकर सोत्साह) नहीं, विष्णुगुप्त चाणक्य तू होनहार का निर्माण कर । अलक्षेन्द्र; पर्वतेश्वर ! नन्द—एक-एकको समझ लूँगा । (मुट्ठी भींचकर) अवश्यंभावि तेरे अजय संकल्प में हो; चाणक्य !

(चर का प्रवेश)

चर—आचार्य की जय हो ! प्रणाम । (प्रणाम करता है ।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—आचार्य की सदा, सर्वदा सर्वत्र जय कहते रहो ।

चर—(सिर झुका कर ।) आज्ञा गुरुदेव !

विष्णुगुप्त चाणक्य—कुसुमपुर जाओ और मधुनन्दा से कहो, वह मुझे मालव गणराज्य की सीमा पर एकान्त में मिले। और आर्य शकटार की परिस्थिति जान आओ । जाओ—

चर—(सिर झुकाकर)—जैसी आचार्य की आज्ञा। (प्रस्थान)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(कठोर हास्य के साथ)—विषकन्या मधुनन्दा और, और पर्वतेश्वर ! (हँसकर) पश्चिमोत्तर भारत को तुमने यवनों के चरणों में बँधक रख दिया । पापी ! तुम्हारा यह द्रोह मधुनन्दा के विषाक्त अधर सदा के लिये बुझा देंगे । चाणक्य क्षमा नहीं करता, मृत्यु देता है । (अपनी खुली हुई चुटिया

को स्पर्श कर) मेरी काल सर्पिणी ! धैय ! कुछ और धैर्य धारण कर और डँसेजा भारत-शत्रुओं को, अचूक विश्वास और अपार शांति के साथ।

(पर्वतेश्वर का अपने महामन्त्री के साथ प्रवेश)

पर्वतेश्वर—आचार्य को मेरा प्रणिपात !

विष्णुगुप्त चाणक्य—आओ, महाराजाधिराज पर्वतेश्वर !

पर्वतेश्वर—महाराजाधिराज ? आचार्य श्री मुख से यह कह रहे हैं आज मैं निश्चिन्त हुआ, जैसे मेरा मनोरथ सफल हो गया! मैं कहता न था, महामन्त्री ! कि आचार्य मनही मन मेरी इस नीति और लक्ष्य वेध से सहमत हैं। बोलो, कहता न था मैं ?

महामन्त्री—(सिर हिलाकर हाँ करताहुआ)—आचार्य सब समझते हैं, महिमन् !

पर्वतेश्वर—आपने यथार्थ कहा। आचार्य बस आचार्य ही हैं।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हँसकर)—मेरा सौभाग्य ही यह है कि मैं सब समझता हूँ, पर्वतेश्वर ! कितना चाहता हूँ कि मगध का सिंहासन प्राप्त हो और महापद्म का जारज पुत्र नन्द मृत्यु की चिर नींद सोये--किन्तु... ।

पर्वतेश्वर— (बीचही में)—किन्तु क्या ? अलक्षेन्द्र की सहायता से क्या यह सम्भव नहीं है ?

विष्णुगुप्त चाणक्य-- (सस्मित) आप वीर हैं; भावुक

पर्वतेश्वर—(स्वगत-सा)—आप, आप सच कह रहे हैं, आचार्य ! इन दिनों मुझे भी इस बात की आशंका हो चली है। इसीलिये मैं आपको खोजता हुआ चला आया। किन्तु अब क्या हो सकता है ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—सब कुछ हो सकता है। हम आपके साथ हैं—छाया की तरह, पर्वतेश्वर ! निराश न होओ। तुम्हारा आचार्य पञ्चनद और यूनान की साथ बजती हुई दुन्दुभियों के अन्तराल का यह रहस्य तभी समझ गया था। कौन है ?

(सहसा प्रहरी एक गुप्तचर को पकड़ कर लाते हैं।)

प्रहरी-नायक—महाराज राजेश्वर की जय हो। यह संदेहास्पद यवन श्रीमानेश्वर का पीछा कर रहा था।

पर्वतेश्वर—यवन है ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—इसे ले जाओ और छोड़ दो। अलक्षेन्द्र की मैत्री को सफल करने के लिये महाराज पर्वतेश्वर मुझ से सलाह कर रहे हैं। महापात्र सेल्यूकस को मेरा यह सन्देशा दे देना। जाओ। (प्रहरियों के साथ यवन-सैनिक का चुपचाप प्रस्थान) देखा ? आपकी प्रत्येक गति-विधि के साथ यवन-दुर्मुख लगे हुए हैं।

पर्वतेश्वर—समझ गया। (अधीर) तो अब मैं क्या करूँ ? मुझे बताइये; आज्ञा दीजिये—मैं आपका दास हूँ, आचार्य ! तपोवन के लिये जितनी चाहें उतनी भूमि आप नाप लें; परन्तु मुझे बचाइये, आचार्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य— (हँस कर)—मैं तो सारे भारतवर्ष की भूमि नाप लेना चाहता हूँ। पर्वतेश्वर ! जिस धूल को लिये हुए मेरे श्रांत पैर आज घूम रहे हैं, वह भी मेरे नयनों में आज आँसू के कण बनी जा रही हैं। (चक्कर काट कर) प्रतिश्रुत होते हो ? मेरा मार्ग-दर्शन बिना शंका किये हुए मानोगे ?

पर्वतेश्वर—प्रतिश्रुत होता हूँ, गुरूदेव ! पुत्री रजनोगंधा की सौगन्ध !

विष्णुगुप्त चाणक्य—तो मैं कहूँ वैसा करते चलो। इस विचित्र स्थिति में बल नहीं, नीति सफल होगी। यदि मेरा कहा न करोगे तो स्वयं के द्वारा खोदे गये इस खड्डे में गिर कर समाप्त हो जाओगे। समझे ?

पर्वतेश्वर—समझ गया।

विष्णुगुप्त चाणक्य—राजा अपने कर्तव्य, सिद्धि और अनासक्त दण्ड पर विश्वास करके चलता है और किसी में नहीं ! अलक्षेन्द्र को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

पर्वतेश्वर—आपके बिठाये बैठूँगा; आपके उठाये उठूँगा, आचार्य ! महामंत्री ! इस घड़ी से आचार्य कहें वैसा करते चलो। हमारा कोष, हमारी सेना और हमारी सत्ता परोक्षतः अभी से हम आचार्य को अर्पित करते हैं। आचार्य, अब तो मेरा विश्वास करेंगे ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—करूँगा। (कंधे पर हाथ रख कर) वत्स पर्वतेश्वर ! कितने क्लान्त लगते हो ? घोर युद्ध से परिश्रान्त हो। जाओ, अपने आचार्य को अपनी सब चिन्तायें

सौंप कर थोड़ा मनोविनोद करो। मगध पहुँचते ही मैं तुमको महापद्म के जारज पुत्र नन्द के स्थान पर बिठा दूँगा।

पर्वतेश्वर—अब मैं विश्वस्त हुआ। आप जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही करूँगा।

विष्णुगुप्त चाणक्य—अलक्षेन्द्र के ओर निकट जाओ। अपनी मैत्रि की माया में उसे संमोहित किये रहो। मुझ से पूछे बिना उससे किसी प्रकार का वचन या किसी प्रकार की प्रतिज्ञा मत करना। अब जाओ—

पर्वतेश्वर—जैसी आचार्यवर की आज्ञा। (प्रस्थानोद्यत) एक बार ओर श्रीमुख से अपने इस दास को सम्राट कह कर पुकारिये, आचार्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हँस कर)—नृत्य और संगीत से श्रान्त मन प्रसन्न करो, महाराजाधिराज राजराजेश्वर पर्वतेश्वर !

पर्वतेश्वर—आचार्य की जय हो। चलो, महामंत्री ! अभियान और सिद्धि आचार्य सँभालें। (महामंत्री के साथ प्रस्थान करता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—सिद्धि और सफलता ? ठीक है। मगध ! सो रहा है या जाग रहा है ? सम्राट पर्वतेश्वर ? (हँस कर) विधाता ! यहाँ मैं तुझे हराऊँगा। (धीरे २ प्रस्थान करता है।)

———

दृश्य—छठा

[यवन और पञ्चनद शिविर में अलक्षेन्द्र का तम्बू]

(सेल्युकस, फिलिप्स, पर्वतेश्वर, और अलक्षेन्द्र ।)

सेल्युकस—(कुछ उत्तेजित होकर)—रुकावट, पद-पद पर प्रतिरोध, आह ! (अधीर) क्या किया जाय ? कुछ समझ में नहीं आता, सम्राट् !

एलेक्जेण्डर—हम सोच रहे हैं—यह क्या हो रहा है, हम समझ रहे हैं ।

फिलिप्स—प्रतिरोध करने वाले गाँव के गाँव जला दिये जायँ। बस ! आप यही कीजिये, महाराज पौरव !

पर्वतेश्वर—आवश्यक तो यह है, परन्तु अग्नि-दाह की बर्बर नीति से व्यर्थ ही जनपदों में असन्तोष फैल जायगा और हमें अभी शोण-तट तक पहुँचना है, महाशय फिलिप्स !

फिलिप्स—मैं जो आवश्यक अनुभव करता हूँ, मैंने वही कहा है, सम्राट् !

एलेक्जेण्डर—आपने तो कहा था, महाराज ! कि वह ब्राह्मण चाणक्य और उसके शिष्य अपने साथ हैं। क्या अब भी वही स्थिति है, पौरव ?

पर्वतेश्वर—आचार्य चाणक्य शिविर में अपने साथ हैं।

फिलिप्स—और उनके वे दो शिष्य ? वे कहाँ है, आज-कल ? नज़र नहीं आते।

पर्वतेश्वर—हम मालव-गणराज्य की सीमा के पास हैं। मालव सिंहरण मालव-संथागार के मन्तव्य पर स्वदेश बुला लिया गया है। स्थिति को सँभालने और समझाने के लिये मौर्य्य चन्द्रगुप्त को आचार्य ने अवन्ती भेजा है—

एलेक्जेण्डर—खड़ा होकर—महाराज पौरव! आप हमारे मित्र हैं—साथी हैं। परन्तु हम पग-पग पर होने वाले प्रतिरोध से झुंझला उठे हैं। हमारा खड्ग प्रति-प्रहार के लिये सन्नद्ध हो उठा है। हम यवन-झण्डे और यवन-वाहिनी का अपमान सहन नहीं करते, समझे आप?

पर्वतेश्वर—सम्राट्! यह प्रतिरोध तो अपने आप विभिन्न जनपद और गण-राज्य कर रहे हैं। ठीक उसी भाँति, जिस भाँति पञ्चनद ने किया था। मगध पहुँचते २ ऐसे अनेक भीषण से भीषण प्रतिरोधों और छोटे-मोटे युद्धों का धैर्य्य से सामना किये बिना चारा नहीं है।

एलेकजेण्डर—ऐसे अनेकों प्रतिरोध होंगे? अच्छा! हम तो सोचते थे, आप और वह ब्राह्मण चाणक्य हमारे साथ हैं, हम आपके लिये मगध-विजय को चले हैं, हमारा प्रतिरोध न होगा; किन्तु हम देख रहे हैं, पग-पग पर यवन झण्डा अपमानित किया जा रहा है, महाराज पौरव!

पर्वतेश्वर—आप निश्चित रहें, सम्राट्! परिस्थिति पर काबू पाने का मैंने और आचार्य ने सब उपयुक्त प्रबन्ध किया है। वे सब प्रयत्न हम कर रहे हैं, जिन से ये छोटे-मोटे प्रतिरोध

कम हो जायें।

एलेकजेण्डर—आप मगध के सिंहासन पर बैठें, हमारा यही एक उद्देश्य है, पौरव ? हम चाहते हैं यूनान और भारत एक दूसरे के बड़े दोस्त हों और भारतवर्ष के लोग सुखी हों—किन्तु (हँसकर) हमने देख लिया, हम आप के साथ हैं, इसे ये छोटे-मोटे जातीय-राज्य पसन्द नहीं करते और हमने फैसला कर लिया है, हम अब लड़ेंगे—प्रत्याक्रमण !

(एनिसॉक्रिटीज के साथ कुछ यवन-सैनिकों का प्रवेश)

एनिसॉक्रिटीज—सम्राट् की जय हो ! अभय !

एलेकजेण्डर—दिया। क्या बात है ?

एनिसॉक्रिटीज—ये व्याकुल और अधीर सैनिक श्रीमानेश्वर से कुछ कहना चाहते हैं।

एलेकजेण्डर—(घूरकर)—क्या कहना चाहते हैं ये ? हमने कई बार सुन लिया जो ये कहना चाहते हैं। वापस घर चलो, यही न ये कहना चाहते हैं ?

१ सैनिक—हाँ, मान्यवर सम्राट् ! हम सब यही कहना चाहते हैं, यूनान वापस चलिये ! हमारी भारी क्षति हो रही है। हर दिन अचानक हमारे गुल्म के गुल्म गायब हो जाते हैं। कदम-कदम पर रोग, थकान और तीरों की बौछार हमें मिल रही है। घर वापस चलो, निकाडोर !

२ सैनिक—हमें पता लगा है, रावी के किनारे किनारे भारी भारी बड़े २ हाथियों की दीवारें खड़ी की जा रही हैं।

लाखों जहरीले तीर हमारे रास्ते में सन सनाते हुए आयेंगे, सम्राट्!·और हमारे सीने भेद देंगे।

३ सैनिक—एक नया शस्त्र, इन्द्रजाल हम पर फैंका जायगा—हमारा खून सूखजायगा, सम्राट्! हमारी सुनिये, घर वापस चले चलिये!

फिलिप्स—किस नालायक ने तुम से ये बातें कही हैं?

४ सैनिक—सारे शिविर में यही चर्चा है। पञ्चनद के सैनिक कह रहे हैं, करोड़ों सैनिक और लाखों हाथी शोण के किनारे जमा किये जा रहे हैं। सैंकड़ों तपस्वी योगी करश्मे करने के लिये हमारा रास्ता देख रहे हैं। हम घर वापस जायेंगे।

एलेकजेण्डर--हम वापस नहीं जायेंगे। हम आगे बढ़ेंगे और मौत का मुकाबिला कर हिन्दुस्तान को फतह करेंगे। कायरों! अपने निकाडोर का यह आखिरी फैसला सुनलो और चले जाओ—सेल्युकस! जो भी सैनिक वापस जाने का नाम भी ले, उसकी गरदन उड़ा दो! (पैर पटक कर) हम जहरीले तीरों को, हाथियों को और जादूगरों को देख लेंगे। हम लड़ेगें-- जाओ! (स्थिर आँखे बन्द कर खड़ा रहता है।)

(एनिसॉक्रिटीज़ के साथ यवन--सैनिकों का चुपचाप प्रस्थान।)

सेल्युकस--सम्राट्!

एलेकजेण्डर--हम एकान्त चाहते हैं।

(फिलिप, सेल्युकस और पर्वतेश्वर उठते हैं और अभिवादन कर प्रस्थान करते हैं।)

एलेकजेण्डर—(आँखे खोल कर, चक्कर काटता है । फिर खड़ा रह कर)—निकाडोर पराजित होगा ? नहीं, नहीं—नहीं । हम विश्व विजय के लिये दुनियाँ में आये हैं । समस्त देवता और पितृगण हमारे साथ हैं—हम अपराजित हैं । हम हार नहीं सकते ।

(प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—सम्राट् की जय हो ! एक ज्योतिषी द्वार पर श्रीमानेश्वर के दर्शन के लिये आतुर खड़ा है । भूत, भविष्य, वर्तमान सब जानता है, सम्राट् !

एलेकजेण्डर—हूँ ! हमारे सामने उपस्थित कर ।

प्रहरी—परम माननीय की आज्ञा । (प्रस्थान)

एलेकजेण्डर— (हथेली देख कर)—क्या खुदा है, इसमें ? (ज्योतिषी का धीरे २ प्रवेश । चुपचाप नमस्कार कर खड़ा रहता है ।) क्या लिखा है—हमारे इस हाथ में, भविष्यवेत्ता ? बताओ—हम जय चाहते हैं और कुछ नहीं चाहते ।

ज्योतिषी—(दोनों हाथ उठाकर) कल्याण हो; सम्राट् ! हम भाग्य के भविष्यवेत्ता हैं । ग्रहपिण्ड ! नक्षत्रों का मौन कथन ?

एलेकजेण्डर—क्या है नक्षत्रों का मौन कथन ?

ज्योतिषी—भयंकर !

एलेकजेण्डर—क्या कहा ? भयंकर ! तुम कोई भेदिये मालूम होते हो । सच बताओ—

ज्योतिषी—(हँस कर)— मैं भविष्य का भेदिया हूँ। आपका शुभ चाहता हूँ, सुनलो, महाराज पौरव धोखा देगा; आपके सैनिक आपसे विद्रोह करेंगे और आपको रोगी, दुःखी और क्षत-विक्षत हालत में जल मार्ग से वापस यूनान जाना पड़ेगा। इस जन्म में आप कभी भारत-सम्राट नहीं हो सकते। भारत-सम्राट् वही होगा, जिसे आचार्य चाणक्य चाहेंगे। (त्वरा से प्रस्थान कर देता है।)

एलेकजेण्डर—ठहरो! (झपटता है; फिर रुककर) ओह! हम किस जाल में फँस गये हैं? (चक्कर काटता है। फिर सहसा खड़ा रहकर) हम देखते हैं, कौन हमारे मार्ग में बाधक होता है-अब? भारत-सम्राट् हम होकर रहेंगे। हम भविष्य बदल देंगे। उस ब्राह्मण चाणक्य को हम चूर २ करके रहेंगे। (लपक कर झालर बजाता है, फिलिप, सेल्युकस, एनिसॉक्रिटीज तथा कई सेनापतियों का वायुवेग से प्रवेश।)

सेल्युकस—अभय! आज्ञा, सम्राट्!

एलेकजेण्डर—हम भाग्य को बदल देंगे। आक्रमण! जाओ, अभी इसी समय आक्रमण आरम्भ करदो। बिजली की तरह टूट पड़ो मालव सेना पर। उनके जहरीले तीर तोड़-दो; कुचलदो—पिचलदो उनके हाथियों को—यह निकाडोर की आज्ञा है! जाओ—"यूनान जिन्दाबाद!"

(फिर खड़ा रहता है। सब "यूनान जिन्दाबाद!" का जयघोष करते हैं।)

पटाक्षेप।

दृश्य—सातवां

[रावी-तट से दूर एक सघन जंगल-मार्ग ।]

(हेलेन का अपनी अन्तरंगिनी अनुचरी-सखी के साथ प्रवेश ।)

हेलेन—(रुक कर)—युद्ध की बीभत्स चित्कारें यहाँ नहीं सुनाई देतीं, सखि ! कैसी शांति है यहाँ ? मन के सोये हुए सपने यहाँ आकर जैसे जाग जाते हैं ।

अनुचरी—(मुस्कुरा कर)—रावी तट का सारा ही युद्ध, उसका चीत्कार, लहू-लुहान लाशें—सब इतना ही क्या बीभत्स हैं, स्वामिनि ! और तो मैं नहीं जानती—वह मौर्य्य सेनापति कदापि बीभत्स नहीं, क्यों ?

हेलेन—(सस्मित)—तेरा तात्पर्य ?

अनुचरी—वही मन के सोये हुए सपने जगने की बात । (हँसती है ।)

हेलेन—तू पूरी निखट्टू है, और क्या ? मौर्य्य चन्द्रगुप्त शस्त्र-विद्या में जितने निपुण हैं, उतने ही भारतीय चित्रकला, संगीत और आध्यात्म में भी पारँगत हैं । क्यों न हों ? हैं तो वे आचार्य चाणक्य के पट्टशिष्य ।

अनुचरी—(मुस्कुरा कर)—और भी एक बात में वे बड़े पारँगत हैं । हैं न, स्वामिनि ?

हेलेन—(सस्मित)—किस बात में सुनूं तो ?

अनुचरी—क्यों बताऊँगी ? बता दूँ तो मेरी स्वामिनी को यहीं भारत में ही छोड़ कर यूनान जाना पड़े । ऐसी आशंकापूर्ण बात हम नहीं कहते ।

हेलेन—(उदास)—सखि ! तू मेरे मर्म को छू रही है। असम्भव कभी सम्भव नहीं होता। कहाँ वे और कहाँ मैं ? पहाड़, समुद्र, नद-नदियाँ, जातीयता, कुलाचार और युद्ध भूमियों में पड़ी हुई क्षत-विक्षत सड़ती हुई लाशें हम दोनों के बीच में है। फिर कभी ऐसा पैर देने वाला इंगित मत करना। (निःसास लेकर) सम्राट् और पिता श्री को कितना कहा कि लौट चलो, यूनान वापस लौट चलो। ये ज्वालायें और रक्त के प्रवाह बन्द करो। परन्तु मेरी कौन सुने ? हे कुलदेवता ! मुझे पैदा ही क्यों किया ? (सिर पकड़ कर बैठ जाती है।)

अनुचरी—स्वामिनि ? भूल हुई, क्षमा ! अभय, स्वामिनि !

हेलेन—(सहसा उठकर)—दिया-अब चल ! आई थी यहाँ कि अपने कोलाहल से, आतप से, वेदना और द्वन्द्व से थोड़ा विश्राम पाऊँ—परन्तु तू ने हृदय के टूटे हुए तार छेड़ दिये—सखि ! बड़ी निर्दय है तू ! चल ! (त्वरा से प्रस्थान करती है। अनुचरी सहमी सी पीछे २ जाती है।)

(दूसरी ओर से पर्वतेश्वर का मधुनन्दा के साथ प्रवेश।)

पर्वतेश्वर—यहीं, प्राणेश्वरी ! यहीं। (रूक कर) आह ! अब जैसे मुक्ति मिली। (हँस कर) क्या पल्टा खाया है, अलक्षेन्द्र के भाग्य ने ? राजनीति कोई हमसे सीखे। "हम भारत विजय करेंगे !" करो भारत विजय ! (उत्ताल हास्य) रावी-तट लोथों से पट गया है—और हम यहाँ हैं। इसे कहते हैं, स्थिति-प्रज्ञता, क्यों मधु ?

मधुनन्दा—हूँ।

पर्वतेश्वर—(पास आकर उसका हाथ पकड़)—क्या-हूँ ? फिर रुष्ट हो गई ? क्या हुआ, थोड़ा विश्राम करने तुम्हारे साथ इधर आ गया तो ? युद्ध हो रहा है—हो क्या रहा है, समाप्त हुआ समझो !

मधुनन्दा—किन्तु कर्तव्य पहले है, राजन् !

पर्वतेश्वर—भाड़ में गया राजन् ! कर्तव्य पहले है ! मैं कब मना करता हूँ यह ? वहाँ आचार्य हैं, सिंहरण हैं—मौर्य्य चन्द्रगुप्त हैं, महामंत्री, सेनापति और न जाने कौन २ हैं ? मधु ! तुम बड़ी निर्मम हो। एकान्त में पास आता हूँ तो सिवाय उपदेश देने के तुम और कुछ करती ही नहीं।

मधुनन्दा—(हँस कर)—और क्या करूँ ? नाचूँ ?

पर्वतेश्वर—हाँ।

मधुनन्दा—(अधिक हँस कर)—और ?

पर्वतेश्वर—(तन्मय देखता हुआ)—और ? बताऊँ ? (आलिंगन की चेष्टा करता है। मधुनन्दा छटक कर दूर चली जाती है।) मधु से भी अधिक मधुर, तरंग से भी अधिक चपल, नवनीत से भी अधिक कोमल, पूर्णिमा के समान शीतलकारिणी मनस्वी मेरी मधु—नन्दा ! मधु ! मधु मेरी !! (दोनों हाथ लम्बे कर आलिंगन का निमन्त्रण देता है।)

मधुनन्दा—(कुछ पास आकर)—अभी नहीं। सम्राट् हो जाओ तब। (कटाक्ष के साथ) आचार्य को पता चल जाय तो ?

पर्वतेश्वर—तो ? तो क्या हो ?

मधुनन्दा—सिर धड़ से अलग हो जाय। आचार्य रागरंग पसन्द नहीं करते और वह भी ऐसे समय। चलिये, महाराज! वापस चलिये—

पर्वतेश्वर—मैं अब किसी की भी परवाह नहीं करता। मधु! एक बार—एक बार प्रियतम कह कर पुकारो।

मधुनन्दा—और न पुकारूँ तो?

पर्वतेश्वर—तो—(उसके दोनों हाथ पकड़ कर)—तो? उठा कर रावी में फैंक दूँगा। (उत्ताल हास्य करता है)

मधुनन्दा—(छटक कर)—बस! तब तो मैं तुम्हारी शत्रु ठहरी। रावी में फैंक दूँगा। समझ गई। (रुष्ट दृष्टि से देखती है।)

पर्वतेश्वर—(पास आकर)—वास्तव में तुम लावण्यमय मधु हो—कितनी सुन्दर, चमत्कृत, सरस, मनमोहक लगती हो, प्राणाधिके! एक बार कहो "प्रियतम!

मधुनन्दा—नहीं कहती। रावी में फैंक दो न!

पर्वतेश्वर—परिहास कादम्ब से भी अधिक मादक होता है, प्रियतमे! (पास आकर उसके दोनों हाथ थाम कर) प्रतिज्ञा करता हूँ, मगध के सिंहासन पर बैठते ही तुमको महादेवी बनाऊँगा; और उसके पूर्व मेरे इस हृदय सिंहासन पर बिराजमान होओ—

मधुनन्दा—(हाथ छुड़ाकर)—मैं इस योग्य कहाँ, महाराज!

पर्वतेश्वर—तो स्वर्ग और पृथ्वी पर और कौन योग्य है? मधुनन्दा! तुम मुझे उस सूने भग्नावशेष में, अचेत अवस्था

में मिली ही क्यों ? हमें क्या पता था, हम तुम्हारे बन्दी हो जायेंगे ?

(सहसा दो चरों का प्रवेश ।)

चर—महाराज राजेश्वर की जय हो !

पर्वतेश्वर—क्यों ? क्या बात है ? युद्ध किस स्थिति पर है ?

चर—परम मान्यवर ! आचार्य ने आशीर्वाद के साथ यह कहला भेजा है कि यवन-नृपति अस्त-व्यस्त और छिन्न-भिन्न हो गया है। युद्ध समाप्त हो गया है। अलक्षेन्द्र के सैनिक विद्रोह कर उठे हैं और त्वरा से स्वदेश लौटने की तैयारी में लग रहे हैं। स्वयं अलक्षेन्द्र भवितव्य को समझ कर जलमार्ग से स्वदेश लौटने के लिये तैयार हो गया है। अब हम सब की राह मगध का राजसिंहासन देख रहा है। आपको अभिनन्दन और आशीर्वाद !

पर्वतेश्वर—जय ! (कण्ठ से हार उतारकर चर को देते हुआ।) जय ! आचार्य चाणक्य ! आपकी जय !! अभिमानी और बर्बर यवन सम्राट् को अन्त में लौटना ही पड़ रहा है। प्रभु ! चलो; हम सत्वर शिविर में चलें। चर, हमें मार्ग दिखा।

चर—जैसी राजराजेश्वर की इच्छा। इधर, इधर-पधारिये, श्रीमन् !

पर्वतेश्वर—(चलता हुआ)—मगध का राजसिंहासन राह देख रहा है—ठीक है। सम्राट् राजेश्वर पर्वतेश्वर ! यह जय

घोष जैसे मेरे कानों में अभी तक गूँज रहा है। मधु! वह धन्य दिवस हमारे लिये दूना धन्य दिवस होगा। हमारी प्रतिज्ञा हिमालय के समान अविचल है, सुना? चलो--

(आगे २ पर्वतेश्वर और मधुनन्दा, पीछे २ चरों का प्रस्थान।)

दृश्य—आठवां

[तटवर्ती मार्ग का चौराहा। चन्द्रगुप्त मौर्य्य, सिंहरण और रजनीगन्धा का प्रवेश।]

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(रुक कर)—यहीं! (चारों ओर देख कर) यह भूमि और आकाश आज पुनः सुरक्षित और भूषित हुए, सिंहरण!

सिंहरण—यवन-नरेश का इस प्रकार अस्त-व्यस्त निराश स्वदेश लौटना एक ऐसी घटना है, जो सदैव कवियों को प्रेरित करती रहेगी। आचार्य ने असंभव को संभव कर दिया! ठीक समय पर सुरक्षित निकटवर्ती गणराज्यों की सेनाओं को लाकर आचार्य ने जय को अचूक कर दिया।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—ठीक कहते हो, सिंहरण! आचार्य हमारी गतिमति है, हमारी प्रेरणा, हमारी अमोघ शक्ति है। हिमालय के समान अडिग और अजय, अपराजित संकल्प के धनी मतिमान आचार्य के प्रताप से ही तो आज यह धन्य

दिन आया है कि अपने को विश्व विजेता कहने वाले यवन-नरेश को जीवित ही मृत के समान स्वदेश बिदा देने के लिये हम यहाँ राह देखते हुए खड़े हैं (निःश्वास खता है।)

रजनी गन्धा—किन्तु मौर्य्य ! यह निश्वास क्यों ? आचार्य को सिद्धि, आर्यावर्त की जय और आपको अपना पारसीक स्वर्ग जो मिल गया है, नहीं ?

सिंहरण—(मुस्करा कर)—मैं भी तो सुनूं, रजनी ! वह कौनसा स्वर्ग है, जिसे मौर्य्य ने मुझसे अबतक छिपा रक्खा है ? क्यों, चन्द्र ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(सस्मित)—वह ? वह कुछ नहीं। स्वप्न सच्चा नहीं होता; स्मृति सदैव नहीं ठहरती ! भद्रे ! जिस स्वर्ग की ओर तुम्हारा संकेत है, वह एक छल स्वप्न का मधुर विभ्रम भर है। और सिंहरण, हम तो आचार्य के एक खड्गधारी सेवक मात्र हैं। इसके अलावा स्वर्ग और नर्क मैं नहीं जानता, बन्धुवर !

रजनीगन्धा— सेनापति सेल्युकस और उनकी वह सुकोमल स्वर्ग-सुषमा के समान राजकुमारी हेलेन यहीं आर्यावर्त में रह रहे हैं, आर्य ! फिर अपने मौर्य्य को आज उल्लास नहीं है—न जाने क्यों ?

सिंहरण—(हँसकर)— समझा ! किन्तु देवी ! तुम्हारे और मौर्य्य के इस एकान्त रहस्य को मैं क्या जानूं ? संगीत की स्वर-लहरियों में दुलरा कर कुमारी हेलेन को तुम कहां ले गये, चन्द्र?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—कहीं नहीं। जीवन के कारागार में मन का स्वप्नलोक बसा है, सिंहरण! हमारा सुख क्या, हमारा दुख क्या? जिसकी विधि खड्ग चलाना है, बीहड़ मार्गों पर अश्व की पीठ पर जिसे दिन-रात उछलते फिरना है, उसे इस कमनीय विभ्रम से मतलब? नहीं। हेलेन कल्पवृक्ष का अत्यन्त मनोहारी पुष्प है, किन्तु अप्राप्य!

सिंहरण—मौर्य्य! जीवन में पहली बार मैंने तुमको निराश पाया है।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—मैं एक निर्दय सैनिक हूँ। राजराजेश्वरों और अधिराजों को धूल में मिलाना मेरा काम है, सिंहरण! कल्पवृक्ष की छाया के नीचे सैनिक नहीं, सम्राट् बैठा करते हैं—छोड़ो इन बातों को।

रजनीगन्धा—क्यों? ऐसी दसों हेलेन मैं अपने बन्धुवर्य्य मौर्य्य पर निछावर कर सकती हूँ। आर्य! क्या अपने मौर्य्य चन्द्रगुप्त आज आर्यावर्त का गौरव और तेज नहीं है? हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—भली निष्पाप रजनीगन्धे! आर्यावर्त की गरिमा और तेज तुम्हारे पिता श्री हैं, मैं नहीं। सम्राट् वे ही होंगे। मैं, तुम-सिंहरण सभी उनके सेवक होंगे; क्यों कि आचार्य का आशीर्वाद उनको प्राप्त है। भूलो मत, भद्रे! आचार्य ने हमें कठिनतम कर्तव्य सौंप रक्खे हैं—निरालस उन्हें सम्पन्न करते चलो, बस! (देखकर) लो, वे सब आगये!

(महाराज पर्वतेश्वर, विष्णुगुप्त चाणक्य, अलक्षेन्द्र, सेल्युकस, हेलेन,
फिलिप्स, एनिसॉक्रिटीज, गणाध्यक्ष तथा सेनापतियों एवं
मन्त्रियों का प्रवेश।)

एलेक्जेण्डर—(रुक कर)—महामात्र सेल्युकस! हम तो विदा हो रहे हैं। आप आर्यावर्त में यूनान के हमारे सर्वाधिकारी प्रतिनिधि होंगे। फिलिप, बेड़ा कितनी दूर है? महाराज पौरव? हम अब चले। जिस दिन आप भारत-सम्राट् बनें, हमें याद कीजिये।

पर्वतेश्वर—आचार्य का आशीर्वाद अलभ्य को लभ्य कर देगा, अलक्षेन्द्र!

एलेक्जेण्डर—सच है। यूनान में हमने श्रद्धेय अरस्तू को देखा और आर्यावर्त में आपके महान् आचार्य को। आचार्य चाणक्य! हम आपको नमस्कार करते हैं। हम भारत-विजय के लिये आये थे, पर अब आपकी आशीष और उपदेश लेकर जा रहे हैं।

विष्णुगुप्त चाणक्य—अलक्षेन्द्र सानन्द और सकुशल स्वदेश जाओ। अपने गुरूदेव अरस्तू से हमारा सविनय नमस्कार कहना।

अलक्षेन्द्र—हम आपका नमस्कार गुरूदेव से अवश्य निवेदन करेंगे। सेल्युकस! इस पल से अब आप यूनान के हमारे प्रतीक हैं। आचार्य चाणक्य का सानिध्य चाहते रहना। हम चाहते हैं, यूनान की यह आर्यावर्त की प्रेम-विजय हो जाय!

सेल्युकस—जैसी मतिमान सम्राट् की इच्छा और आज्ञा !

(नेपथ्य में "यूनानकी जय !" का जय घोष होता है ।)

अलक्षेन्द्र—नहीं ! अकेले यूनान का जय नहीं, यूनान और भारत का जय-घोष होने दो ! बेटी हेलेन, तुमने उस दिन सच कहा था, खड्ग हृदय को काट देता है और स्नेह-प्रसन्न मुस्कराहट कटे हुए हृदयों को जोड़ देती है। खडग का धनी मैं आज यह समझ पाया। अपने योग्य और मनस्वी पिता श्री के साथ भारत में रहते हुए तुम अथाह मुस्कराहट से यूनान और भारत के कटे हुए हृदय जोड़ने की कोशिश करती रहना।

हेलेन—सम्राट् ! आपका वियोग मैं कैसे सहूँगी। आपके असीम वात्सल्य की धारा में सदैव बहती रही हूँ, मेरे पिता !

अलक्षेन्द्र—चिरञ्जीवी रहो,बेटी ! हम रुक नहीं सकते। नहीं। जिसे छोड़ चुके, उसे छोड़ चले। अच्छा, तब विदा ! हम चले, तरंगों के आश्रय पर उस पार—उस पार जहां हमारे पितृओं का शक्तिशाली देश है, जहां हमारे स्वप्नों का क्षितिज और पुरुषार्थ की धरती मिलती है, आमीन !

सेल्यूकस—(आर्द्र)-सम्राट् ! (घुटने टेक कर) मेरे देवता ! हम यूनानियों के अधिराज ! (उठता हुआ) अजर हो—आपका यश ! (सीधा खड़ा रह कर) यूनान हार नहीं सकता ! नहीं—

अलक्षेन्द्र—(स्थिर देखता हुआ)— सच कहा, सेल्युकस ! यूनान अजय है ! यूनान हार नहीं सक्ता— नहीं (सिर धुन कर) नहीं !

विष्णुगुप्त चाणक्य—कौन नहीं हारता, अलक्षेन्द्र ? सभी हारते हैं, विजयोन्मत्त जातियाँ हारती हैं; निश्चिन्त यश, उन्मादी वीरत्व और विभोर पुरुषार्थ, आसक्त शक्ति और निगढ़ सामर्थ्य सभी टूट जाते हैं। व्याकुल न हो, साहसी यवन ! अपराजित आत्मा और चिरन्तन सत्य कभी नहीं हारता—कभी नहीं टूटता।

अलक्षेन्द्र—सच है, सच है, आचार्य ! अच्छा, तो सब को हमारा नमस्कार ! विदा !

मालव-गणाध्यक्ष—नमस्कार ! सहर्ष विदा। यवन-नरेश, भारतीय महासागर के सैकड़ों योजनों तक हम आपकी विदा चाहते हुए आपके साथ हैं।

अलक्षेन्द्र—आपका आभार ! (सहसा तन कर) यूनान जिन्दाबाद ! भारतीय वीरो ! हम कह जाते हैं, दिन आयगा, यूनान का प्रतिनिधित्व एक नया अवतार धारण करेगा। पाल चढ़ादो ..

विष्णुगुप्त चाणक्य—पृथ्वी भर के अवतारों का स्वागत हमारी तलवारें करती आ रही हैं, और हमारे शक्तिशाली बाहु सदैव उनका अभिवादन किया करते हैं। जाओ अलक्षेन्द्र ! शान्त हो जाओ, और जाओ। विदा ! भारतभूमि सदैव अपराजित रही है और रहेगी। जातियाँ यहाँ आँधियों की तरह आईं और लोरियाँ होकर हमारे कानों में समा गईं ! भारत की दुन्दुभियो, बज उठो ! सिंहरण, लंगर उठा दो !

सिंहरण—आचार्य की जय हो ! जय आर्यावर्त ! (प्रस्थान)

(अलक्षेन्द्र सहित सबका प्रस्थान । विष्णुगुप्त चाणक्य और मौर्य्य चन्द्रगुप्त खड़े रहते हैं । नेपथ्य में दुन्दुभियाँ बजती हैं । शंखध्वनि के साथ जय-गीत गाया जाता है ।)

नेपथ्य में—"जय-जय !

जयति जय, जय ! जय !!
भारत-जय—दिग्दिशि में जय ! जय !!
जय भारत-ध्वज जय !
जय भारत-असिधारा—
जय झेलम, सिन्धु, शोण-धारा—
जय ! जन-जन समूह जय भारतवर्ष हमारा—"

(धीरे २ गीत मन्द होता है)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हाथ उठा कर)—जय ? अभी कहाँ ? यह तो एक रक्त-रंजित आँधी को हमने विदा दी है। चलो, चन्द्रगुप्त ! पाटली पुत्र ! आर्य शकटार ! अभी जय कहाँ ? (क्षितिज की ओर देखकर) तुम देख रहे हो, मौर्य्य ! क्षितिज की ओर एक बादल की तरह, स्मृति के व्यामोह की भाँति विश्व विजय का स्वप्न लूटा जा रहा है ! देखो और समझो, चन्द्रगुप्त ! आम्भीक, अलक्षेन्द्र, महाराज पौरव और नन्द भारतीय समुद्र के ऐसे ही छोटे मोटे ज्वार हैं; ऐसे बादल हैं जो उमड़-उमड़ कर रक्त की वर्षा करते और विला जाते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—मेरे आचार्य ! आप क्या हैं ? आज मैं आपको देख नहीं सकता—आचार्य ! आप महान हैं, अतिमहान् !

विष्णुगुप्त चाणक्य—महान् केवल मृत्यु है, चन्द्रगुप्त! और आज मैं जीवन हूँ। यवन-बेड़े को ठेल कर यूनान की ओर बहा ले जाती हुई भारतीय समुद्र की वे अथाह नीली तरंगें इन आँखों में आसमुद्रात् शक्तिशाली, गुम्फित, दृढ़ भारतवर्ष को साकार कर रही हैं—सजीव! मेरा हाथ पकड़ो और मेरे साथ चलो—मगध की ओर, जिसके अन्तराल में अपने भारत का यह स्वप्न सोया पड़ा है—मूर्च्छित और मर्दित! चलो उधर, चन्द्रगुप्त! अपने आचार्य को उधर ले चलो!

(विष्णुगुप्त चाणक्य चुपचाप खड़ा रहता है और चन्द्रगुप्त मौर्य ठिठका सा देखता है)

पटाक्षेप।

तृतीयाङ्क

दृश्य—पहला

[पाटलीपुत्र के बाहर शोण-तट के पास एक पुराना खण्डहर । शकटार का धूलि-धूसरित रूप में मलवा हटाकर बाहर आना ।]

शकटार—(सहसा, दिग्मूढ़ सा स्वगत)— कोई नहीं है—भ्रम ! (सकपकाया हुआ चारों ओर देखकर) भ्रम है ! (सहसा अट्टहास कर) मैं हूँ—अकेला !! मैं, अकेला—नरकंकाल मात्र ! हाँ, मैं हूँ अकेला इस नारकीय पृथ्वी पर और मेरे बच्चो ! तुम ? उस भूगर्भ में, भूख की ज्वाला में भस्म, क्षारवत् हड्डियों के ढेर होकर चिर नींद सो गये हो ! (सिर के बाल नोच कर) शकटार, तू जीवित है ? अन्धकार, भूगर्भ का घिनौना अन्धकार तेरी आँखों में न घुला और विधाता के निर्मम जड़ावे तुझे न चबा सके—धिक्कार है तुझे, शकटार ! (सहसा डरकर) चुप ! कौन है ? (चारों ओर देख) कोई नहीं, मैं हूँ—जीवित काल उस नन्द का। मैं हूँ शकटार ! नन्द ! नीच ! पापी !! कौन है ? वहीं ठहरो,

वहीं—अन्यथा ! (फटी आँखों से देखते हुए) मैं दानव हूँ—खा जाऊँगा, वहीं ! (विष्णुगुप्त चाणक्य का धीरे २ प्रकाश में आना) ठहरो !

विष्णुगुप्त चाणक्य—यह मैं हूँ चाणक्य, आर्य शकटार !

शकटार—(विश्वास न करता हुआ)— तुम ? चाणक्य ? यहाँ, विष्णुगुप्त !

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ ! मैं विष्णुगुप्त चाणक्य यहाँ इस खण्डहर में। प्रतिहिंसा के लिये तुम्हारा घोर अट्टहास मेरे कानों में अभी तक गूँज रहा है।

शकटार—(दाँत पीसकर)—चाणक्य ! मेरे मार्ग से हट जाओ—अन्यथा, मैं तुमको भी क्षमा न कर सकूँगा। मेरे बच्चों की कोमल हड्डियों से बनाये गये मार्ग से यह भूगर्भ चीर कर मैं दानव शकटार पुनः प्रकट हुआ हूँ—हट जाओ ! उस नीच नन्द का लहूलुहान शव मैं रुद्र होकर घसीटूँगा। संसार भर के गीधों को निमंत्रण देकर उस आततायी की अँतड़ियाँ नुचवाऊँगा। मैं, शकटार यह करूँगा—हट जाओ !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(गम्भीर, किन्तु सस्मित)—नहीं। एक ही मार्ग के बटोही एक साथ चलते हैं—अलग २ नहीं।

शकटार—क्या कहा ? तुम—तुम भी, चाणक्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ; मैं भी ! महापद्म के इस जारज पुत्र नन्द ने तुम्हारे सुकुमार बच्चों को अत्याचार की चक्की में पीस दिया। क्या नहीं किया इस मद्यप विलासी आततायी

नीच ने ?

शकटार— (पास आकर साश्चर्य किन्तु प्रसन्न)—विष्णु-गुप्त ! विष्णुगुप्त ! यह तुम कह रहे हो ? तुम भी पीड़ित हो मेरी ही तरह ? (अट्टहास) तब ठीक है ! तुम्हारे साथ क्या किया इस नारकीय ने ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—मेरे भारतवर्ष की मगध-प्रजा को इस राज-दस्यु ने सता रक्खा है ! क्या कौमार्य, शील, प्रतिष्ठा, न्याय, आशा और उल्लास और क्या अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सभी कुछ इस जारज ने शोष रक्खा है ।

शकटार—तो अब ? शीघ्र कहो, चाणक्य ! मैं समझ रहा हूँ । वर्षों तक मैंने मगध–साम्राज्य के सन्धि-विग्रह की बागडोर सँभाली है—यह सब जानते हैं, विष्णुगुप्त ! तुमभी जानते हो । बोलो, एकसाथ अब किस ओर जाना है ?

विष्णुगुप्त चाणक्य— आर्य शकटार ! (खुलीहुई शिखा बता कर) इस काल-सर्पिणी को देख रहे हो ? एकदिन कुसुम पुर के प्रमोद-बन में इसे छेड़ा गया था । इसी शिखा से खींच कर मुझे राजमार्ग पर फैंक दिया गया था !

शकटार—जघन्य ! आह !!

विष्णुगुप्त चाणक्य—तभी से यह खुली हुई है ज्यों की त्यों । (घूम कर) यह तब बंधेगी, जब मगध-साम्राज्य अखण्ड शक्तिशाली आसमुद्रात् भारतवर्ष की धुरी बनेगा । समझते हो, शकटार ? यवन-नरेश थका और निराश यूनान पहुँच गया

है, और झेलम तथा रावी की युद्धाग्नियों से झुलस कर यमदूत के पद-चाप सुन रहा है।

शकटार—इतना सच हो गया! झंझावात आया और गया?

विष्णुगुप्त चाणक्य— हाँ, आर्य शकटार! झंझावात के ध्वंस के बाद हम नवनिर्माण के आँगन में, विजयी वाहिनियों के साथ, पाटलीपुत्र की उप-सीमाओं में धँस आये हैं—चुप चाप! एक भूकम्प होगा और महापद्म का जारज पुत्र नन्द अपने पारसीक आसव-पात्र के साथ लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा। तैयार हो?

शकटार—हाँ, हाँ, विष्णुगुप्त! अपने बच्चों की नुकीली हड्डियों से भूगर्भ खोदता हुआ उस घोर अन्धकार में मैं इसी प्रकाशमय दिवस का स्वप्न देखा करता था। क्रान्ति!

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ, क्रान्ति! (कटार निकाल कर देता हुआ) यह लो और कूच करती हुई स्वतन्त्र आर्यावर्त की वाहिनियों के पैरों से ठोकरें खाकर भागते हुए नन्द की छाती में भोंकदो।

शकटार—(लपक कर कटार लेते हुए)—समझा। सम्राट् कौन होगा?

विष्णुगुप्त चाणक्य—विधाता, तुम और मैं जिसे चाहेंगे; वाहिनियों के हर्षोल्लसित झण्डे जिसे चाहेंगे। अभी कल का विचार मत करो, शकटार! मृत्यु की चर नींद सोनेदो·एक के बाद एक इन स्वार्थ और द्रोह की कठपुतलियों को; बदमस्त

राज-मुकुटों को धूल में मिलजाने दो—भारतवर्ष ने अ ः नातेज-स्वी सम्राट् भी पैदा कर लिया है। अब सन्नद्ध हो जाओ ! मैं चला और अभियान आरम्भ हुआ ! वज्र-कठोर मुट्ठी में यह कटार पकड़े मेरे पीछे २ चले आना ! (प्रस्थान)

शकटार—(कटार को छाती से लगाकर)— परमेश्वर ! तुम हो—घट घट व्यापी। तुम ही ! (उताल प्रमत्त सा हास्य कर) चिरतृषित मेरी तू—नन्द की छाती चीर कर घुस जा ! पुत्रो ! तुम्हें रक्त-तर्पण दूँगा। बुड्ढे ! तेरी मुट्ठी !! (त्वरा के साथ प्रस्थान)

(चन्द्रगुप्त मौर्य्य का दूसरी ओर से प्रवेश)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य— यहो ! (देख कर) यही वह खण्डहर है—यहीं ! (चक्कर काट कर) अभियान प्रारम्भ हो गया। अमात्य राक्षस सदैव की भाँति परिभ्रमण के लिये निकला है ! उसे क्या पता कि सोया हुआ पाटलीपुत्र जब जगेगा, तब.....किन्तु मुझे क्या ? मैं ? मैं केवल पिप्पली-कानन का राजकुमार मात्र हूँ। आज्ञा हुई कि अमात्य राक्षस को खण्डहर के पास वश में करो—यहाँ आ पहुँचा। हाँ, और क्या ? (निसास लेकर) मगध के सिंहासन पर पर्वतेश्वर बैठेगा और हम उसके दास होंगे—हूं ! विधि ! (देखकर) वे कौन हैं ? (आड़ में होजाता है)

(मधुनन्दा और पर्वतेश्वर का प्रवेश)

पर्वतेश्वर—यहाँ नहीं, प्रिये ! और दूर—सघन वन में।

यहाँ नहीं ।

मधुनन्दा—(रुक कर) मैं थक गई हूँ । इस खण्डहर में थोड़ा विश्राम क्यों नहीं कर लिया जाय ?

पर्वतेश्वर—यहाँ किसी भी समय सैनिकों के आ जाने का डर है । जानती नहीं, सारा पाटलीपुत्र घिर रहा है। आचार्य के चर चारों ओर मँडरा रहे हैं । चलो, शोण के उस मोड़ पर कुछ दूर एक सघन सुन्दर स्थान है। सतार तन्द्रिल आकाश को कुछ घटाएँ चिरौरी कर मानो गुदगुदा रही हैं । वहाँ ! वहीं, मेरी प्राणेश्वरी, वहीं ! (हाथ पकड़ कर ले चलने का उपक्रम करता है ।)

मधुनन्दा—सच, महाराज ! प्रहर भर से अधिक हो गया आपके साथ घूमते २ । थक न जाऊँगी ? मैं तो चलती हूँ वापस ! अभियान प्रारम्भ हो गया है और हम यों डुलते फिरें ! क्या यह अच्छा है राजन् !

पर्वतेश्वर—फिर वही राजन् ! अभियान प्रारंभ होगया है तो होने दो । सिंहरण को सब समझा दिया है । फिर महामंत्री जो है । मैं तुम्हारे बिना पल भर भी जी नहीं सकता । तुम नहीं तो मुझे सम्राट् भी नहीं होना । मधुनन्दा ! जादू कर दिया है तूने, निर्दय !

मधुनन्दा—महाराज !

पर्वतेश्वर—अब जो तूने मुझे महाराज कहा तो (खड्ग की ओर इंगित कर) तेरी जिह्वा काट लूँगा । मधुनन्दा ! मैं जल

रहा हूँ। आज यह आग शीतल कर दे, प्रियतमे ! (हाथ पकड़ कर) आज कुछ भी हो जाय, तुझे मेरे प्रगाढ़ आलिंगन में बँधना ही होगा। चाहे मेरी मृत्यु हो जाय पर मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा। चल !

मधुनन्दा—(मुस्कुरा कर)—चलती हूँ, चलती हूँ, राजन् !

पर्वतेश्वर—फिर राजन् ?

मधुनन्दा—जिह्वा काट लो न ? (कटाक्ष-पात करके) वीर-वर ऐसे रसिक भी होते हैं, यह अब समझ में आया।

पर्वतेश्वर—वीर की असिधारा जब कुंठित हो जाती है, तब वह रमणी के अधरों पर तीव्र की जाती है। एक बार मुझे प्रियतम कहो, मधुनन्दे !

मधुनन्दा—(पास आकर)—प्रि-य-त-म !

पर्वतेश्वर—(अर्धालिंगन में उसे ले चलते हुए)—मधुनन्दे ! प्रिये, प्राणेश्वरी, मेरी मनमोहिनी ! अब मुझे कुछ नहीं चाहिये—(प्रमत्त की भाँति शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान करता है।)

(चन्द्रगुप्त मौर्य्य प्रकाश में आता है।)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—यह मद्यप विलासी लंपट भारत सम्राट् होगा ! आचार्य, पर्वतेश्वर का यह नीच जार करतब आप नहीं जानते ? (चक्कर काट कर) आँखें विश्वास न कर सकीं; मन हुआ कि सिर धड़ से अलग कर दूँ। परन्तु—कौन है ?

(चर का प्रकाश में आना)

चर—आचार्य की जय हो !

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—जय ! क्या सँदेशा है ?

चर—श्रीमन् ! आचार्य को सब ज्ञात है। पञ्चनद-पति का मार्ग अवरुद्ध न हो, और आप सावधान हो जायँ, इसीलिये मुझे भेजा गया है।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—अच्छा ?

चर—(सहसा देख कर)—सावधान ! अमात्य राक्षस ! (प्रस्थान।)

(अमात्य राक्षस का भ्रमण करते हुए विचार-मग्न प्रवेश।)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आइये, अमात्य राक्षस !

अमात्य राक्षस—(चौंक कर)—हूँ ! कौन है ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—मैं।

अमात्य राक्षस—कौन ? मौर्य्य चन्द्रगुप्त ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—हाँ मैं, झेलम, रावी और व्यास के युद्धों का महाबलाधिकृत पिप्पलीकानन का राजकुमार चन्द्रगुप्त मौर्य्य, यहाँ आपकी प्रतीक्षा में न जाने कब से खड़ा हूँ।

अमात्य राक्षस—मेरी प्रतीक्षा में ? (हँस कर) अच्छा संयोग है ! मैं तो समझा शकटार का प्रेत मुझे इस खण्डहर से बुला रहा है। मेरी प्रतीक्षा में क्यों खड़े हो ? (व्यंग से) क्या उस महान् विप्रवर ने तुमको अभी तक मूर्धाभिषिक्त नहीं किया ? या क्या सम्राट् की सेना में कोई उच्च पद अभिलषित है—मेरी प्रतीक्षा क्यों, मौर्य्य ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—उच्चाभिलाषा मैं केवल ईश्वर और आचार्य से ही करता हूँ, अमात्य ! राजकुमार चन्द्रगुप्त मौर्य्य

आप से कुछ माँगने नहीं, कुछ कहने आया है।

अमात्य राक्षस—मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि पिप्पली-कानन के वृषलों ने अब स्वयं को 'राजा' कहना आरम्भ कर कर दिया है।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—और अमात्य को यह जानकर और भी अधिक हर्ष होगा कि आचार्य चाणक्य के आशीर्वाद से वे अपने को 'राजेश्वर' भी कहने लगेंगे।

अमात्य राक्षस—और श्रीमान् स्वयं को क्या कहेंगे—आचार्य चाणक्य के आशीर्वाद से ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(हठात्)--सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य !

अमात्य राक्षस--(आहत)--सम्राट् ! (खड्ग पर हाथ रखते हुए) दुस्साहसी वृषल ! सम्राट् नन्द की सीमा में खड़े होकर अमात्य राक्षस के सामने अपने को सम्राट् कहने का द्रोहात्मक साहस ! सावधान !!

चन्द्रगुप्त मौर्य--(खड्ग पर हाथ रखता हुआ)--सावधान, अमात्य ! मैं भी यही कहने आया हूँ।

अमात्य राक्षस--मैं सावधान ? क्यों ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य ने हमसे कह रक्खा है कि अमात्य राक्षस बुद्धिमान हैं, राज्य-भक्त वीर हैं, और अपने भले बुरे को पहिचानते हैं। (मुस्कुराता है।)

अमात्य राक्षस—(हठात्)—अच्छा ! चणक के उस प्रख्यात पुत्र चाणक्य ने हमारे लिये यह कहा है ? आश्चर्य !

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—और भी आश्चर्य आपको होने वाले हैं,

अमात्य। आपके सम्राट् नन्द के दिन गिने हुए हैं। अतः मैं आपसे कहने आया हूँ—सावधान !

अमात्य राक्षस—तब क्या पाटलीपुत्र राज्य-द्रोह और षड्-यन्त्र की प्रतारणा से भर गया है ? दुर्धर्ष युवक ! अमात्य राक्षस के रहते हुए तुम समझते हो, अपने कुचक्र में सफली-भूत होगे ? (ताली बजाता है)

(अंग-रक्षकों के साथ विष्णुगुप्त चाणक्य का प्रवेश)

विष्णुगुप्त चाणक्य—क्या आदेश है, अमात्य ?

अमात्य राक्षस—(घूम कर)—कौन ? चाणक्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ वही चाणक्य, जिसकी काल-सर्पिणी के समान यह खुली हुई शिखा आज भी लहरा रही है। (अंग-रक्षकों को इंगित करता है। अंग-रक्षक राक्षस को घेर लेते हैं।) सौभाग्य है, आपका बुलावा व्यर्थ न हुआ।

अमात्य राक्षस—ओह ! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—नहीं। आर्य शकटार के बच्चे जिस भूगर्भ में घुट घुट कर मर गये, उसके पास महापद्म के जारज पुत्र नंद का अनुभवी, कुशाग्र-बुद्धि, गम्भीर और विचक्षण अमात्य चन्द्रगुप्त मौर्य्य के सैनिकों से घिरा खड़ा है, और सामने ब्राह्मण चाणक्य उपस्थित है। यह स्वप्न नहीं, सत्य है।

अमात्य राक्षस—(जोर से) सम्राट् के विरुद्ध षड्यन्त्र ! (पैर पटक कर) अपने ही अधिकरण की सीमा में मैं बन्दी !

विष्णुगुप्त चाणक्य—चिल्लाओ मत! वह दिन याद करो, जिस दिन एक ब्राह्मण को कुश के समान उसकी पवित्र शिखा खींच कर राज-मार्ग पर फेंक दिया था—समझा था आपने उस दिन कि भिक्षा माँगने वाला वह आहत ब्राह्मण किसी दिन क्या लौटेगा? क्यों, बौद्ध अमात्य! (हँसकर) किन्तु आज वह ब्राह्मण भारतवर्ष की सन्नद्ध लोह-वाहिनियों के साथ कथित सम्राट् नन्द और उसकी राजधानी को अपनी मुट्ठी में जकड़ कर आपके सामने खड़ा है—असंख्य झण्डों के रूप में उसकी यह अपमानित शिखा मगध के राजसिंहासन पर लहरा रही है। सिंहरण! (सिंहरण का प्रकाश में आना) भारतवर्ष के भावी महामात्य आर्य राक्षस को घसीट कर नहीं, सम्पूर्ण उचित सम्मान के साथ अपने साथ ले जाओ।

अमात्य राक्षस—सम्राट् नन्द के प्रति स्वामि-भक्ति की शपथ से मैं प्रतिश्रुत हूँ! द्वन्द्व-युद्ध, आचार्य!

विष्णुगुप्त चाणक्य—द्वन्द्व-युद्ध? (सस्मित) अखण्ड शक्तिशाली आसमुद्रात् भारत-साम्राज्य का भावी महामात्य यही चाहता है, तो यही सही। वत्स चन्द्रगुप्त! आर्य राक्षस को द्वन्द्व-युद्ध दो—सावधान! सांघातिक चोट न हो, क्योंकि तुम्हारे विशाल राजतंत्र को येही चला सकते हैं, मैं नहीं।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(चकित-सा)—आचार्य?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ, मौर्य्य! मदिरा के नशे में झूमते हुए महाराज पर्वतेश्वर और स्वामिभक्ति के दास अमात्य राक्षस

मुझ से द्वन्द्व-युद्ध चाहें तो मेरे आजानुबाहु तो तुम हो, चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त मौर्य—मेरे आचार्य ! (प्रणाम कर) मैं तत्पर हूँ, अमात्य !

अमात्य राक्षस—राजद्रोह का घोर पाप मुझ से नहीं हो सकता—नहीं !

विष्णुगुप्त चाणक्य—पाप और पुण्य की मर्यादा मुझ से सीखो, बौद्ध अमात्य ! सत्य-संस्थापन और न्यायोत्कर्ष के लिये किया गया द्रोह पुण्य है—अभीष्ट कर्तव्य है। द्वन्द्व-युद्ध में हारकर सदैव के लिये चन्द्रगुप्त का दास बने रहना चाहते हो, तो तुम्हारी इच्छा।

अमात्य राक्षस—चन्द्रगुप्त का दास ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—अवश्य उस चन्द्रगुप्त मौर्य्य का दास, जिसने साहस के साथ यवन अलक्षेन्द्र की रण-नीति का अपहरण किया; झेलम के युद्ध में जिसके व्यूह और विक्रम का चमत्कार प्रकट हुआ; जिसके खड्ग का सम्मान आज भारतवर्ष के ख्यात सेनाध्यक्ष करते हैं; जिसको गणाध्यक्ष एक स्वर से सर्वश्रेष्ठ वीर और सेनानी स्वीकार करते हैं; और आज जिसके उत्तुंग ध्वज के नीचे पाटलीपुत्र की प्रजा महापद्म के जारज पुत्र नन्द को उसके अगणित जघन्य नारकीय कुकृत्यों का दण्ड देने के लिये सम्पूर्ण विद्रोह करचुकी है—उस चन्द्रगुप्त मौर्य्य का दास—सुन लिया, बौद्ध अमात्य !

अमात्य राक्षस—सुन लिया।

विष्णुगुप्त चाणक्य—और भी सुनो, राक्षस ! नन्द के सभी मंत्री, अयोग्य सेनापति और वे सब कुचक्री इसी तरह घिर चुके हैं, जिस प्रकार आर्य शकटार के कुटुम्ब के बन्दीघर इस खण्डहर के पास आप ! अपना भला-बुरा सोच लो।

अमात्य राक्षस—(विचार-मग्न)—आचार्य, मैं समझ रहा हूँ। ओह !

विष्णुगुप्त चाणक्य—वत्स राक्षस ! आचार्य आपका भी आचार्य है, समझते हो ? नन्द को विधाता भी बचा नहीं सकती। मेरी यह काल-सर्पिणी उसे डस कर रहेगी—भारी २ लोह-शृंखलाएँ उसे जकड़ कर पाटलीपुत्र की वीर और विद्रोही प्रजा के सामने उसे घसीट लायेंगी। अतः विवेकपूर्वक अनासक्त होकर अपने उज्ज्वल भविष्य का स्वागत करो, समझे ? सिंहरण ! अमात्य राक्षस को ले जाओ; हम इनको अभी से आसमुद्रात् भारत-साम्राज्य का महामात्य मनोनीत करते हैं। स्वीकार है, तुम्हें चन्द्रगुप्त ?

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—मुझे, आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—हाँ, तुम्हें। हाँ कहो या ना कहो—तुमको स्वीकार करना ही है।. तुम भी उत्तर दो राक्षस !

अमात्य राक्षस—मैं क्या कह सकता हूँ ? विधि !! स्वीकार न करूँ तो क्या करूँ ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—कल्याण हो। अपनी मुद्रा मुझे दे दो।

अमात्य राक्षस—(मुद्रा देते हुए)—चाणक्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य— (मुद्रा लेते हुए) — हाँ, चाणक्य ! क्या कहना चाहते हो ? ले जाओ अमात्य को, सिंहरण ! और मौर्य्य ! एक गौरव-गीत गाते हुए लक्षाविध सैनिकों को राज मन्दिर की ओर कूच करने दो ! जाओ—पाटलीपुत्र, एक नया जीवन धारण कर ! इस धरती पर और आकाश के नीचे एक नई महिमा से मण्डित हो, मेरे मगध—मेरे भारतवर्ष !! (धीरे २ प्रस्थान ।)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—सिंहरण ! मैं भी चला ! नये जीवन और नये उत्साह के साथ ! अमात्य, चिन्ता छोड़ दो; आचार्य मंगलमय हैं—ईश्वर और आचार्य पर समस्त घटनाचक्र छोड़ दो, और अपना अभीष्ट साधते जाओ—जाओ ! (प्रस्थान)

सिंहरण—पाटलीपुत्र ! जय !! चलो, भावी महामात्य !

अमात्य राक्षस—यथार्थ है—यथार्थ है । चलिये ।

(अमात्य राक्षस को लेकर सिंहरण का प्रस्थान ।)

दृश्य—दूसरा

[सम्राट् नन्द का आखेट से लौटते हुए अपने कुछ पार्षदों और मन्दाकिनी के साथ प्रवेश । मार्ग ।]

सम्राट् नन्द—हम श्रांत हैं। (रुक कर) विश्राम ! (एक पार्षद से) अयोग्य मूर्खो ! इस बीहड़ मार्ग में हमें कष्ट दिया। कहाँ है आखेट ? वनराज है ! तुम्हारा सिर है। अश्व भी जहाँ न जा सके, वहाँ हमें चलना पड़ा। आसव,मन्दाकिनी !

मन्दाकिनी—(पात्र में आसव भरती हुई)—महाराज ! आखेट तो ऐसा ही अच्छा। बीहड़ निर्जन में आपके साथ चलने में मुझे बड़ा सुख मिला। (आसव-पात्र देती है।)

सम्राट् नन्द—(आसव-पात्र लेकर और पीकर)--आह ! तुम्हें सुख मिला ? तो हमें भी सुख मिला। (इधर-उधर देखकर) हम कहाँ हैं ? पाटलीपुत्र कितनी दूर है ?

१ पार्षद—पाटलीपुत्र यहाँ से प्रायः एक योजन होगा। क्षमा, सम्राट ! हम तो श्रीमानेश्वर की इच्छा और आज्ञा के दास हैं।

२ पार्षद—अभी पहुँचे जाते हैं पाटलीपुत्र, श्रीमन् !

सम्राट् नन्द--अभी पहुँचे जाते हैं ! कहाँ ? नर्क में ? विशाखनन्दन ! "क्षमा, सम्राट ! हम आपके दास हैं !"-मेरे दास हो ? अपने स्वार्थ के दास हो तुम सब ! मन्दाकिनी, आसव ! थकान के मारे हम मर रहे हैं--आह !

कर देती है ।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—अवश्य सम्राट्! सुना है, चणक के पुत्र चाणक्य ने गण-राज्यों की सेनाएँ लेकर राजधानी को घेर लिया है।

सम्राट् नन्द—चाणक्य ने यह किया है—उस ब्राह्मण ने! हम उसे हाथी के पैरों तले रौंद देंगे! अमात्य राक्षस क्या कर रहा है? आसव! (पुन: पीता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—सुना है, विद्रोहियों ने उनको बन्दी बना लिया है, महाराज!

सम्राट् नन्द—(प्रमत्त सा)—हूँ! विद्रोहियों ने बन्दी बना लिया है—तो हम उन सबको बन्दी बना लेंगे; भूगर्भ में ढकेल देंगे; जीवित जला देंगे। तुम—तुम कौन हो? एँ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—चणक का पुत्र चाणक्य!

सम्राट् नन्द—क्या? क्या! चाणक्य! यहाँ कोई है? चाणक्य!! (पार्षदों से) पकड़ लो इसे—इसे—इस चाणक्य को!

विष्णुगुप्त चाणक्य—(सैनिकों से,—घेर लो इस प्रमत्त को और ले जाओ। (पास आकर) नन्द! ढकेल दे भूगर्भ में, जला दे जीवित! (अट्टहास) सम्राट् नन्द! (खुली हुई चुटिया की ओर इंगित कर) भूल गया इसे—इस काल-सर्पिणी को? मैं वही हूँ और उधर शकटार भूगर्भ फाड़ कर निकल आया है। कल जिस प्रजा के सिंहासन पर बैठकर तूने मनमाने अत्याचार किये हैं, उसी के दरबार में तेरा न्याय होगा। शठ! तेरे बन्दीघर, तेरे भूगर्भ, तेरे पाश

कल सब घिनौने प्रेतों के समान उपस्थित होंगे—ले जाओ इसे और उसी भूगर्भ में डाल दो, जिसमें आर्य शकटार के सुकुमार बच्चे तिलतिल कर मर गये—(सैनिक नन्द को पकड़ कर कसने लगते हैं। मन्दाकिनी भागना चाहती है।) ठहरो। (मन्दाकिनी मंत्र-मूढ़ सी ठहरती है।) कहाँ जाती हो ? स्वर्ण और ऐश्वर्य की चेरी ! आज रात भर तू भी उसी भूगर्भ में रह और यह शेष आसव इसे पिलाती रह—(पैशाचिक हास्य के साथ प्रस्थान करता है।)

सम्राट् नन्द— (छटपटा कर)—छोड़ दो मुझे—एक २ को टुकड़े २ कर दूँगा।

१ सैनिक—चुप रहो—अन्यथा !

२ सैनिक—सीधी तरह से चले चलिये ! चीं-चपड़ की की तो (बल्लम बता कर) आचार्य की आज्ञा है, सीधा पेट में घुसेड़ दो—चलो !

३ सैनिक—पाप का घड़ा यों भरता है ! अब देना उत्तर पाटलीपुत्र को, पापी !

(पार्षदों और नन्द तथा मन्दाकिनी को ले जाते हैं)

पर्दा उठता है

दृश्य—तीसरा

[पाटलीपुत्र के राजप्रासाद के सामने का विशाल चौगान; कुछ गणाध्यक्ष, चन्द्रगुप्त मौर्य्य, सिंहरण, रजनीगन्धा तथा जनता का उत्तेजित समूह। पीछे से शकटार, विष्णुगुप्त चाणक्य, राक्षस इत्यादि।]

सिंहरण—(हाथ उठा कर लोगों को शान्त करता हुआ)—सुनिये! पाटलीपुत्र के वीर-विद्रोही नागरिको! पिप्पली-कानन के राजकुमार और अपने यशस्वी महाबलाधिकृत चन्द्रगुप्त मौर्य्य अब आपसे कुछ निवेदन करेंगे। सुनिये!

१ नागरिक—किन्तु आचार्य चाणक्य कहाँ हैं?

२ नागरिक—हम उनके दर्शन करना चाहते हैं—कहाँ हैं वे?

कुछ नागरिक—आचार्य्य चाणक्य की जय! (जय-घोष होता है।)

३ नागरिक—हम कब से आचार्य चाणक्य को देखने और सुनने के लिये यहाँ खड़े हैं। कहाँ हैं वे? कहीं सम्राट् के कुटिल गुप्तचरों ने—

४ नागरिक—आचार्य का बाल भी बाँका हुआ, तो हम इस राजप्रासाद की ईंट से ईंट बजा देंगे।

कुछ नागरिक—निस्संदेह! आग लगा देंगे! (हल्ला होता है)

सिंहरण—(पुनः हाथ उठा कर)—आचार्य सुरक्षित हैं।

पाटलीपुत्र के बाहर और अन्दर सहस्रों शस्त्रधारी सैनिक आचार्य के मार्ग की रक्षा करते हुए सन्नद्ध खड़े हैं। महापद्म के जारज पुत्र और आपके अपराधी नन्द को लेकर वे मतिमान अभी आते ही हैं—

५ नागरिक—(कुछ आगे धँसकर)—उस मद्यप व्यभिचारी को शृंखलाओं में जकड़ कर हमारे सामने उपस्थित किया जाय!

६ नागरिक—उस जारज नृशंस को घसीट कर लाया जाय!

कुछ नागरिक—टुकड़े २ करदो उसके! (हल्ला होता है।)

सिंहरण—(पुनः शान्त करता हुआ)—निस्संदेह! 'आप लोग जो चाहते हैं, वही होगा। शान्त हो जाइये! (शान्ति हो जाती है।) यही नहीं कि अपराधी नृशंस नंद को आपके सामने लोहे की शृंखलाओं में जकड़ कर लाया जायगा, किन्तु इससे भी अधिक आचार्य ने निर्णय किया है कि मगध का यह साम्राज्य अब और आज से आसमुद्रात् भारत-साम्राज्य में बदल दिया जाय! पश्चिमोत्तर आर्यावर्त को एक सूत्र में बाँधकर, यवन-सम्राट् को व्यास-तट से पुनः स्वदेश भेज कर और शोण की यह क्रान्ति कर अपने महान् आचार्य ने आज एक शक्तिशाली भारत-वर्ष की नींव डाल दी है! भारतभूमि के अधिकांश गणराज्यों ने मगध के छत्र-सिंहासन को भारतवर्ष का छत्र-सिंहासन बनाना स्वीकार कर लिया है। भारतवर्ष की जय! (तुमुल जयघोष होता है) शांत! आचार्य

पधार रहे हैं— (दुन्दुभियाँ बजती हैं। विष्णुगुप्त चाणक्य का शृंखलाओं में जकड़े हुए नन्द को लेकर प्रवेश।)

कुछ नागरिक—आचार्य चाणक्य की जय !

कुछ नागरिक—पाटली-पुत्र की जय !

कुछ नागरिक—भारत-साम्राज्य की जय !! (जय घोष होता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(मञ्च पर से)— जय ! (शान्त हो जाने का इंगित करता है।) जय ! सर्वत्र जय !! (शान्ति हो जाती है।) पाटली पुत्र के भले नागरिको ! मेरे आगमन की राह देखते हुए आप सब बड़ी देर मे खड़े हुए हैं— और मुझे देर हुई ! जनता जनार्दन के दर्शनों के लिये मुझे जल्दी आना चाहिये था—आज से भी पूर्व, और भी अधिक पहले; किन्तु मैं कैसे आता ? उद्भाण्ड-तट पर आर्यावर्त की अर्गला एक देश-द्रोही कुलांगार के हाथ में थी। कैसे आता मैं आज से भी पहले, जब हिन्दुकुश के गण-राज्यों को चूर कर यवन तलवारें झेलम की अजस्र जलधारा को काट डालना चाहती थीं। जब समस्त भारत-भूमि का भाग्य स्वार्थ और राज्य-लिप्सा शत्रुओं के चरण-चूम कर लिख रही थी, तब मैं कैसे आता ? फिर भी मैं आया था पाटलीपुत्र में और नशे में बेहोश सम्राट् के सामने गया था--इसलिये कि यवन-लोह को विफल करने के आर्यावर्त के अभिमान में वे अगुआ हों; किन्तु तब मुझे मेरी यह तबसे खुली हुई शिखा खींच कर कुसुमपुर के राजमार्ग पर फैंक दिया गया था—महापद्म के जारजपुत्र नन्द ने यह किया था !

कुछ नागरिक—मार डालो—

कुछ नागरिक---नराधम, नीच! काट डालो--(हल्ला)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हथेली से इशारा करते हुए)—शान्त! किन्तु ब्राह्मण देर से ही सही, परन्तु अचूक आता है। आज वह पाटलीपुत्र की महान् जनता के सामने आया है, एक, अखण्ड, शक्तिशाली समुद्र पर्यन्त विस्तृत भारत-साम्राज्य का निश्चय और अभियान लेकर! हाँ! पाटलीपुत्र वासियो! जनपदों और गण-राज्यों को एक सुदृढ़ सूत्र में बाँध कर हमें एक अजय भारतवर्ष बनाना है! यह हम करेंगे; यही अब से हमारा स्वप्न है, मनोरथ है—यज्ञ है। जय भारतवर्ष! (दुन्दुभियाँ बजती हैं और तुमुल जयघोष होता है।) सुनो! भूगर्भ का अन्धकार चीर कर आपके और हमारे विचक्षण सन्धि-विग्रहिक आर्य शकटार निकल आये हैं, अपने सुकुमार बच्चों की हड्डियों से उस नारकीय कारागार का मार्ग खोद कर बाहर निकले वे हमारे श्रद्धेय आर्य आज अपना वह दुःख भूल गये हैं—वह दुःख जिसे याद कर हृदय स्तब्ध हो उठता है।

कुछ नागरिक—आर्य शकटार! कहाँ हैं?

कुछ नागरिक—किसने उन्हें भूगर्भ में डाला।

विष्णुगुप्त चाणक्य—किसने डाला भूगर्भ में आर्य शकटार और उनके बच्चों को? मुझ से क्यों पूछते हो, पाटलीपुत्रवासियो! लो, सँभालो अपने उस अपराधी को, जो आज दिन तक तुम्हारे सिंहासन को छीन कर अन्याय

और अत्याचार की चक्की पीसता रहा; जिसका रोम-रोम अपहरण किये हुए कौमार्य्य और कलंकित सतीत्व से सना हुआ है; जिसकी रग-रग पीड़ितों के चीत्कारों से हिलती-डुलती है—लो सँभालो उस मद्यप वार-विलासी आततायी अपने सम्राट् नन्द को ! (संकेत करता है। सैनिक नन्द को लोगों की ओर धकेलते हैं।)

कुछ लोग—मारो, मारो—चीर डालो-(आगे धँसते हैं। हल्ला और गड़-बड़ मचती है। सहसा वायुवेग से शकटार भीड़ में धँसता है।)

शकटार—रुको, लोगो ! अपने पवित्र हाथ इस नराधम के रक्त से अपवित्र मत करो। मैं जो हूँ, जीवित भूत—प्रतिहिंसा ! मेरे बच्चों की सद्गति के लिये रक्त-तर्पण ! हटो—(भीषण वेग से धँसकर नन्द को पकड़ लेता है।) सम्राट् ! (अट्टहास) सम्राट् यह ! (पुनः पैशाचिक अट्टहास) जा, नराधम ! रौरव की ज्वालाओं में जलने के लिये ! हा-हा-हा ! (नन्द के कलेजे मे कटार भौंक देता है। नन्द लड़खड़ा कर गिर पड़ता है।) मेरे बच्चो ! जहाँ भी हो, देखो ! तुम्हारे इस अभागे पिता ने तुम्हारा रक्त-तर्पण कर दिया है— अब सद्गति प्राप्त करो ! सद्गति ! (घूमकर) आचार्य ! मुझे मार डालो; अब जीकर क्या करूँगा ? (विष्णुगुप्त चाणक्य की ओर हाथ फैलाकर) अब जीकर मैं क्या करूँगा !

विष्णुगुप्त चाणक्य—(मंच से नीचे आकर शकटार को थाम कर ऊपर लेता है)—शान्त ! आर्य शकटार, शान्त ! (कंधे से लगा कर शकटार का अर्धालिंगन सा कर) अमात्य राक्षस ! आर्य शकटार

से कुछ तो कहो—क्या आपको अब भी कुछ नहीं कहना है?

अमात्य राक्षस—(धीरे २ शकटार के पास आकर) — पितृ तुल्य आर्य शकटार ! हमें क्षमा कर दीजिये—हम सब आपके निकट दोषी हैं, तात ! (सिर झुका कर) अब जो कुछ हुआ है, उसे भुला दीजिये।

शकटार—नहीं, नहीं ! मैं दोषी हूँ—अपराधी ! नन्द को मैंने मारा है। अमात्य ! मैं द्रोही हूँ—मुझे दण्ड दीजिये।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(मुस्कुरा कर)—तो दण्ड मैं दूँगा। पाटलीपुत्रवासियों ! आर्य शकटार ने आततायी नन्द की हत्या कर अपने हुतात्मा बच्चों का रक्त-तर्पण किया है ! और अब हम से दण्ड की भिक्षा माँग रहे हैं ! क्या आप लोग आर्य शकटार को दण्डित करना चाहते हैं—इसलिये कि उन्होंने एक वार-विलासी, मद्यप, अत्याचारी नृशंस सम्राट् की हत्या की है ?

कुछ नागरिक—नहीं ! नहीं !! (हल्ला होता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—तथास्तु ! शान्त ! (कुछ आगे आकर) तब सुनिये ! गणराज्यों की सेनाओं से घिरी हुई इस विशाल मानव-मेदिनी के सामने मैं अपनी यह खुली हुई शिखा बाँधता हुआ घोषणा करता हूँ कि आज और अभी से पाटलीपुत्र एक और अखण्ड शक्तिशाली भारत-साम्राज्य की राजधानी है।

कुछ नागरिक—पाटलीपुत्र की जय !

कुछ नागरिक—भारतवर्ष की जय !!

विष्णुगुप्त चाणक्य—जय ! (इंगित से शान्त करता हुआ) पश्चिमोत्तर भारत के जनपद, पार्श्ववर्ती गणराज्य और मगध-साम्राज्य आज और अभी से इस भारत-साम्राज्य के अभिन्न किन्तु स्वायत्त अंग होंगे ! स्वायत्त होते हुए भी इनकी वाहिनियाँ भारत-साम्राज्य की विश्वविजयी महावाहिनी की अंगीभूत सेनाएँ होंगी। अलग २ संघागारों और परिषदों से नियुक्त प्रतिनिधियों की इस महान् साम्राज्य की एक केन्द्रीय राज्य-परिषद् होगी—एक ध्वज, एक मुद्रा—एक छत्र-सिंहासन ! दुन्दुभियों ! बजो, गहगहो—विजय के आदर में और भारत-साम्राज्य के भविष्य के स्वागत में !

(वाद्य बजते हैं। सैनिक-अभिवादन होता है। विष्णुगुप्त चाणक्य अपनी खुली हुई शिखा बाँधते हैं। जय घोष।)

मालव-गणाध्यक्ष—भारत-साम्राज्य की सेवा में हमारे ये बाहु और ये खड्ग होंगे !

पिप्पलीकानन-मुख्य—हमारे तन-मन इस महान् आर्य-साम्राज्य की सेवा में समर्पित हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य चाणक्य की जय ! (जय-जयकार होता है।)

सिंहरण—एक छत्र, आसमुद्रात् आर्यावर्त की जय !!
(पुनः जयघोष होता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(सस्मित)—इस आसमुद्रात् भारत-साम्राज्य के प्रथम महामात्य अपने यशस्वी आर्य राक्षस होंगे,

और सन्धि-विग्रहिक अमात्य-श्रेष्ठ आर्य शकटार होंगे !

कुछ नागरिक—धन्य ! साधु !!

कुछ नागरिक—अमात्य राक्षस ! सुनो—सुनो !

महामात्य राक्षस—(कुछ आगे आकर)—पूज्य आचार्य-चरण, अध्यक्षो, प्रमुखो, महाबलाधिकृत, सेनापतियो और नागरिकों ! अपने इस पुराण देश के इतिवृत्त में आज का दिवस सदैव के लिये स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। आज आचार्य-चरणों के प्रताप से जनपदों और गणराज्यों की झूलती हुई और एक दूसरे से टकराती हुई सीमाएँ जहाँ एक मेखला में गुँथ रही हैं, वहाँ दूसरी ओर समस्त विविध भारतीय प्रजाएँ एक महान् जातीयता के सूत्र में गुम्फित होने के लिये आतुर हो गई हैं। शताब्दियों के बाद एकता, अखण्डता, शक्ति और श्री-वृद्धि का महान् भारतीय मनोरथ आज गर्भित हो रहा है। जय ! सर्वत्र और सदैव के लिये चारों दिशाओं में अपने इस मनोरथ की जय हो ! अब हमें अपना शक्तिशाली अगुआ, धीर—वीर नेता और समर्थ सम्राट् नियुक्त करना है।

कुछ लोग—निस्संदेह ! जय !

चन्द्रगुप्त मौर्य—(आगे आकर)—शान्त ! पञ्चनदपति महाराज पौरव दृष्टिगोचर नहीं हो रहे। वे कहाँ हैं, आचार्य ! वे ही तो इस पद के लिये...।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(बीच ही में)—सुनो, पाटलीपुत्र-वासियो ! सुनो ! पिप्पली-कानन का राजकुमार और अपना

यशस्वी महाबलाधिकृत क्या कह रहा है ? पञ्चनदपति महाराज पौरव दृष्टिगोचर नहीं हो रहे ? (निसास रखकर) हों कहाँ से ? बेटी रजनीगन्धा, तुमसे वे कुछ कह गये हैं क्या ?

रजनीगन्धा--(नम्रतापूर्वक)—नहीं, पूज्य ! मुझे उनकी कोई जानकारी नहीं और न जानकारी चाहती ही हूँ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—सुन लिया, नागरिको ! पञ्चनद-पति की सुपुत्री कहती हैं, महाराज पौरव की उनको जानकारी नहीं कि वे कहाँ हैं ? किन्तु मुझको सूचना मिली है कि वे सूने वन में एक राज-वेश्या के साथ देखे गये थे। जब हम पाटलीपुत्र के महान् अभियान में व्यस्त थे, महाराज पर्वतेश्वर—यवन-नरेश अलक्षेन्द्र के मित्र और साथी—एक वेश्या के साथ शोण-तट पर विहार करने में मग्न थे।

आर्य शकटार—(बीच ही में)—हम ऐसे किसी भी नरेश को अपना सम्राट् बनाने का विचार नहीं कर सकते।

सिंहरण—जो यवन-नृपति के साथ २ रावी और व्यास के तटों तक उनका मित्र और साथी बन कर आया हो और मगध की सीमा में पैर रखते ही जो पारसीक मदिरा में डूब गया हो, उसे हम अपने भारत-साम्राज्य का सम्राट् कैसे बना सकते हैं ?

कुछ नागरिक—नहीं ! नहीं !!

विष्णुगुप्त चाणक्य—जैसी आप लोगों की इच्छा। मुझे इससे अधिक अब कुछ भी नहीं कहना। आर्य शकटार ! आप

हम सब में वयोवृद्ध और श्रद्धेय हैं। आप ही बताइये, अपना सम्राट् कौन हो ?

आर्य शकटार—(आगे आकर)— और कौन हो, आर्य विष्णुगुप्त ? मेरे मत से प्रबल पराक्रमी, धीर-वीर, पुरुषार्थी, सेनाओं का श्रद्धेय, शत्रुओं का काल, परम तेजस्वी राजकुमार मौर्य्य चन्द्रगुप्त ही अपना प्रथम भारत-सम्राट् होना चाहिये।

महामात्य राक्षस—मैं आर्य शकटार के मत से सहमत हूँ।

सिंहरण—निस्संदेह, यही होना चाहिये।

रजनीगन्धा—हम सब यही चाहते हैं, आचार्य !

मालव-गणाध्यक्ष— मौर्य्य चन्द्रगुप्त ! धन्यभाग्य !! आर्य शकटार, आपने हम सब अध्यक्षों और प्रमुखों के मन की बात कही।

कुछ नागरिक—चन्द्रगुप्त ! मौर्य्य चन्द्रगुप्त !! जय !

कुछ सैनिक—हमारा धीर-वीर चन्द्रगुप्त मौर्य्य ! जय !!

विष्णुगुप्त चाणक्य—(मुस्कुरा कर)–आओ, वत्स चन्द्रगुप्त ! आगे आओ; और अपनी प्रजा, अपने सैनिक, अपने नरेश और अमात्यों को दर्शन दो। चन्द्रगुप्त मौर्य्य आगे आकर प्रणाम करता है।) चिरञ्जीवी हो, मेरे मौर्य्य ! (जन-समूह से) लोगो ! यह रहे आपके और हमारे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य ! (पुनः तुमुल जय-घोष होता है।)

चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य ! मेरे आचार्य !! (विष्णुगुप्त चाणक्य के चरण पकड़ लेता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—(चन्द्रगुप्त मौर्य्य को उठाता हुआ)—कल्याण हो, भारत-सम्राट् ! उठो और अपना छत्र-सिंहासन सँभालो ! जय !!

जन-समूह—सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य की जय !! (जय-घोष होता रहता है। राज्य-पुरोहित चन्द्रगुप्त मौर्य्य के मस्तक पर मुकुट रखता है। महामात्य राक्षस और अमात्य शकटार अभिवादन करते हैं। सैनिक-सलामी तथा दुन्दुभियाँ बजती हैं। जय-घोष होते रहते हैं।)

महामात्य राक्षस—(शान्त हो जाने का इंगित कर)—सावधान ! सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य ! (शान्ति छा जाती है। चन्द्रगुप्त मौर्य्य कुछ आगे आता है।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(शान्त, गम्भीर मुद्रा में)—पूज्य आचार्य-चरण, महामात्य राक्षस, आर्य शकटार, अध्यक्षो, प्रमुखो, सेनापतियो, सैनिको और मेरे प्रिय प्रजाजनो ! एक छत्र भारत-साम्राज्य के सिंहासन पर आप सबने मुझे जिस प्रेम, विश्वास और आदर के साथ बिठाया है, उसके उपयुक्त होने का मैं प्राण-प्रण से प्रयत्न करूंगा। आपकी और हम सब की इस पवित्र निधि नवोदित भारत-साम्राज्य को बद्धमूल, एक, अखण्ड शक्तिशाली और विशाल बनाये रखता हुआ भारत-भूमि को विदेशी आक्रान्ताओं एवं अन्तरंग शत्रुओं से हीन करने का मैं अहर्निश प्रयत्न करता रहूँगा। भारतवर्ष के इन ऊर्ध्व-केतुओं की साक्षी से और आचार्य चरणों का स्पर्श कर मैं वचन देता हूँ कि हिमालय से कन्याकुमारी तक उत्तर से दक्षिण

और पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई आसमुद्रात् कोटिशः भारतीय प्रजा को एक सूत्र में बाँधता हुआ, वर्णाश्रम धर्म के अनुसार उसके योग-क्षेम और अभ्युदय के लिये मन, वचन, कर्म से जीवन भर तक प्रयत्न करता रहूँगा। मुझे आशीर्वाद दीजिये। (सिर झुका कर जन-समूह का अभिवादन करता है।)

जन-समूह—जय! सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य की जय!

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य चाणक्य मेरे और राज्य के सर्वोच्च सलाहकार और मार्गदर्शक होंगे, और हम, हमारी राज्यपरिषद् तथा सभी सम्बन्धित व्यक्ति आचार्य चरण के मार्ग-दर्शन में आनेवाली शताब्दियों के लिये भारतवर्ष का नव-निर्माण करते हुए सब के कल्याण का प्रबन्ध करते रहेंगे।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हाथ उठा कर)—तथास्तु!

(चन्द्रगुप्त मौर्य्य विष्णुगुप्त चाणक्य को प्रणाम करता है। सैनिक-अभिवादन। पुष्पवर्षा और जयघोष होता है।)

पटाक्षेप।

दृश्य—चौथा

[सेल्यूकस, पार्षद तथा कार्नेलिया का प्रवेश ।]

कार्नेलिया—(रुक कर)—थक गई, पिता ! अब मैं एक डग भी चल नहीं सकती ।

सेल्यूकस—(रुक कर)—पुत्री मेरी ! हमें चलना होगा; हम रुक नहीं सकते । सम्राट् निकाडोर की मृत्यु के शोक ने अभी तक तुमको अभिभूत कर रक्खा है । परन्तु हम शोकाकुल होकर यदि इस समय रुक गये, तो सम्राट् की यह विशाल सिद्धि यूनान-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जायगा । विद्रोही सेनापतियों और क्षत्रपों को हम वश में करके रहेंगे—पड़ाव कितनी दूर है ?

१ पार्षद—समीप है, श्रीमन् ! अत्यन्त समीप है ।

२ पार्षद—आवृत्त और संकीर्ण मार्ग से हम श्रीमान को टूटे और रूठे हुए सैनिकों के पड़ाव के पार्श्व में ले आये हैं—महापात्र को देखते ही वे जय-जयकार कर उठेंगे ।

सेल्यूकस—जय-जयकार कर उठेंगे ! अवश्य, हम उनको अभय प्रदान करेंगे और पितृदेव तुल्य सम्राट् के अपूर्ण कार्य को सत्वर पूर्ण करेंगे । हम यह अवश्य करेंगे—चलो !

कार्नेलिया—पिता !

सेल्यूकस—क्या है ?

कार्नेलिया—अभय ! मेरे भले और महान पिता ! रक्त

और लाशों का यह अनन्त व्यापार मुझे जड़ कर गया है। निकाडोर एलेक्जेण्डर महान् ने विजय-विस्तार के लिये अपने व्याकुल प्राण दे दिये—अब तो यूनान की यह प्यासी तलवार...।

सेल्यूकस—हेलन ! तुम चाहती हो, यूनान-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाय ? विद्रोही और नीच सेनापति और क्षत्रप सम्राट् के पवित्र रक्त और उत्तम महत्वाकांक्षा से सींची गई भूमि को हथिया लें और हम निर्वीर्य की भाँति इस हानि को देखते रहें—नहीं। आगे बढ़ो।

कार्नेलिया—अभय ! तो मुझे आर्यावर्त जाने की स्वीकृति प्रदान कीजिये, पिता ! मैं युद्ध की चीत्कारों के इस लोमहर्षक वायु-मण्डल में साँस नहीं ले सकती।

सेल्यूकस—(घूर कर)—आर्यावर्त ! तुम आर्यावर्त लौटना चाहती हो ? अच्छा (सस्मित) हम प्रबन्ध कर देंगे। किन्तु तुम क्या अब भी यही समझती हो कि मौर्य्य चन्द्रगुप्त तुम्हें संगीत और चित्रकला सिखाने आ सकता है ? नहीं। उस ब्राह्मण चाणक्य के चातुर्य्य से वह मगध के सिंहासन पर जा जमा है—सम्राट् हो गया है ! (अट्टहास) सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य ! हम उसे भी समय आने पर देख लेंगे। एक बार पुनः झेलम, रावी और व्यास के तटों पर यूनान की तलवार चमकेगी। समझी !

कार्नेलिया—समझ गई।

सेल्यूकस—हम देखेंगे, कितने दिवस मौर्य्य चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर राज्य करता रहेगा। हम यूनान-साम्राज्य की सीमाओं में आर्यावर्त ही नहीं समस्त मगध-साम्राज्य को मिला देंगे। हमारी तलवार यह करेगी। वे कौन आ रहे हैं? (देखता है।)

१ पार्षद—पथिक हैं क्या?

२ पार्षद—(देख कर)—नहीं; प्रतीत होता है ये इधर ही हमें खोजते हुए आ रहे हैं।

(मेगेस्थनीज का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश।)

सेल्यूकस—कौन? मेगेस्थनीज?

मेगेस्थनीज—हाँ, आदरणीय श्रेष्ठ! मैं। श्रीमान् को खोजता हुआ यहीं पहुँचा हूं। समस्त विद्रोही सैनिकों की ओर से मैं श्रीमान का स्वागत करने आया हूँ! देव देव पितृदेव सम्राट् निकाडोर के निधन के बाद जिस गृह-कलह का भीषण और विनाशकारी सूत्रपात हो चला था, उसका अन्त सन्निकट है, मान्यवर!

सेल्यूकस—यह हम जानते थे। (सस्मित) तो आप केवल इतिहास-वेत्ता ही नहीं, इतिहासकार भी हैं। हम प्रसन्न हैं—परम प्रसन्न, बान्धव मेगेस्थनीज! आज यूनान की गौरव ध्वजा फहराती रह गई। (आँखें बन्द कर) स्वर्गीय महान्, मेरे निकाडोर! अब पितृलोक में आपको शान्ति मिल जायगी।

१ सैनिक—हम भटक गये थे, महापात्र! हमें अभय देकर मार्ग दिखाइये।

२ सैनिक—यूनान-द्रोहियों की लाशों को हम ठोकरों से क़बर में ढकेल देना चाहते हैं, श्रीमन् !

सेल्युकस—निश्चय ही। समझा था तुमने महाशय फिलिप, कि तुम यूनान की महिमा को कलंकित कर सकोगे। परन्तु नहीं—स्वर्गीय सम्राट् की ओजस्वी आत्मा हमारे साथ है !

मेगेस्थनीज—सत्य है। सम्राट् निकाडोर एलेक्जेण्डर ने अपनी यशस्वी तलवार से विशाल धरती पर जो विजय और गौरव की महान् गाथा लिखी है, वह अमिट है और रहेगी। अब पधारिये—

सेल्युकस—चलो ! हमारे पैरों में नई दौड़ आ गई है। हम स्फूर्ति और साहस से मजबूर हो गये हैं। चलो, हेलन ! अपने व्याकुल मनोमन्थन को कहदो, चुप हो जाय। सम्राट् की मृत्यु की घोर रात्रि के बाद यूनान का नव प्रभात हो रहा है—मेरे यूनान ! तेरी जय हो !

(आगे २ मेगेस्थनीज़, पार्षद्, सेल्युकस तथा सैनिक जाते हैं।)

दृश्य—पाँचवाँ

[सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य का अन्तरंग आवास]

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य— (स्वगत-सा)—मैं सब कुछ सह सकता हूँ, परन्तु उपालम्भ मैं सह नहीं सकता। आचार्य मुझे कठपुतली समझते हैं—मुझे कठपुतली कर रक्खा है। (खड़ाहोकर) हम विजयी हो कर राजधानी में आये हैं और आचार्य श्मशान की सी शान्ति चाहते हैं। कौमुदी-उत्सव नहीं मनाया जायगा। क्यों? मैं पूछता हूँ, क्यों नहीं? (चक्कर काट कर) मैं विश्वास नहीं करता था, परन्तु—चन्द्रगुप्त! (स्वयं ही ग्लानि से हँस कर) सम्राट् चन्द्रगुप्त! नहीं, आचार्य की रहस्यमय लोहेच्छा का एक पुतला मात्र! नहीं, मैं सम्राट् नहीं। इससे तो अच्छा था, मैं पिप्पलीकानन का वही राजकुमार मात्र रहता। कंचुकी! (कंचुकी का प्रवेश; विनीत प्रणाम करती है।) किञ्चित मदिरा! जा— (कंचुकी नम्र अभिवादन कर जाती है।) सम्राट् हो कर मैं तुम्हें पा नहीं सकता, हेलन! सम्राट् होकर मैं कहीं आ नहीं सकता; कहीं जा नहीं सकता। सम्राट् एक बन्दी है— बन्दी! शोभा, ऐश्वर्य, भय और आदर का एक स्वर्ण-बन्दी!

(कंचुकी का आसव-पात्र लेकर प्रवेश)

कंचुकी— अभय, प्रभो! (आसव पात्र देती है।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य— (आसव-पात्र लेकर पीजाता है)—

अभय ? अभय मुझसे माँगती है ? सरल है, और क्या ? (हँसकर) अभय आचार्य से माँग, मूर्खे ! जिनकी गुप्त संकेत-पूर्ण अँगुली मनमाना कर रही है; जा— (कंचुकी भयभीत सी पिछले पैरों लौट जाती है ।) दासी है; परन्तु मुझसे अधिक स्वाधीन है । आचार्य ! सीमा आचुकी है । (अंग-रक्षक का प्रवेश) क्या है ?

अंग-रक्षक—सम्राट् की जय हो । प्रधानामात्य आर्य राक्षस श्रीमानेश्वर के अभी दर्शन चाहते हैं ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—उनसे कहो, आचार्य से मिललें— हमारी तबियत ठीक नहीं है । (अंग-रक्षक जाना ही चाहता है; परन्तु उसे रोक कर) ठहरो ! जाओ, प्रधानामात्य को आदर के साथ लिवा लाओ ।

अंग-रक्षक—(प्रणाम कर)—जो महाराजाधिराज की आज्ञा । (प्रस्थान करता है ।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—महाराजाधिराज ? यह व्यंग है; मौन, दुःखद भेदक व्यंग है । कौमुदी उत्सव मनाया जायगा—निश्चय ही मनाया जायगा । हमारे पुरुषार्थ की, हमारी सेनाओं की अभेद्य गति की, हमारे साम्राज्य-विस्तार और संगठन की विजय का यह उत्सव होगा—होकर रहेगा ।

(प्रधानामात्य राक्षस का प्रवेश)

प्रधानामात्य राक्षस—अभय, सम्राट् !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—हम आज्ञा देते हैं, कौमुदी

उत्सव ठाठ से मनाया जाय, आर्य राक्षस। भारतवर्ष के राज्याध्यक्षों और समस्त प्रतिष्ठित नागरिकों को हमारी ओर से निमन्त्रित किया जाय। समझे आप ?

प्रधानामात्य राक्षस— जैसी मतिमान सम्राट् की आज्ञा; किन्तु आचार्य .....

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—यह हमारी आज्ञा है, प्रधानामात्य ! हमें आचार्य की राय और इच्छा ज्ञात है, किन्तु फिरभी हमने आज्ञा दी है। कौमुदी-महोत्सव मनाया जाय।

प्रधानामात्य राक्षस— सम्राट् की आज्ञा शिरोधार्य है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—चाहे फिर वह कोई हो, यदि वह इस महोत्सव के मनाने में विचार, या इंगित से भी बाधा डालने की कुचेष्टा करे, तो उसे बन्दी बना लिया जाय। उसे भूगर्भ में ढकेल दिया जाय।

प्रधानामात्य राक्षस—जैसी आज्ञा। अब मैं कुछ—

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य— (बीचही में) — कौमुदी-महोत्सव की गरिमा और शोभा पाटलीपुत्र को मनोहर से परम मनोहर बनाकर रहे। विजयी सैनिक-प्रदर्शन हो, संगीत और नृत्य से पाटलीपुत्र के उद्यान और उपवन झुनझुना उठे। समझे ? हम स्वयं महोत्सव के प्रथम नागरिक होंगे।

प्रधानामात्य राक्षस—जैसी सम्राट् की रमणीय इच्छा। अब कुछ निवेदन करूँ ?

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—कौमुदी महोत्सव के बाद। हम

क्लान्त हैं, चारों दिशाओं में हम विजयी वाहिनियों के साथ रहे हैं। रण व्यूह, को चीर कर हमारी असिधारा अब अपने म्यान में पौढ़ी हुई है—समझे आप ?

प्रधानामात्य राक्षस—अत्यन्त महत्वपूर्ण संदेशा है, सम्राट् ! और मंत्रणा अभी आवश्यक है। यूनान में घटना-चक्र घूम कर एक स्थिति पर रुक गया है। क्षत्रप सेल्युकस कदाचित् पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण कर दे। अतः आचार्य ने मुझे सत्वर अभी श्रीमानेश्वर के पास भेजा है। हमें चौकन्ना, जागरूक और तैयार रहना है—आचार्य चाहते हैं कि—

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य—आचार्य क्या चाहते हैं ? और जब आचार्य की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, तो मुझ से मंत्रणा की आवश्यकता ? प्रत्येक पल हम आचार्य की आज्ञा मानने के लिये विवश नहीं। (अंग-रक्षक का त्वरा से प्रवेश) क्या है ?

अंगरक्षक—अभय सम्राट् ! श्रीमान् आचार्य-चरण पधारे हैं।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—मार्ग अबाध हो।

अंगरक्षक—जैसी श्रीमानेश्वर सम्राट् की इच्छा। (प्रस्थान)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—हमारा काम केवल मृगया ही है क्या ? अश्व की पीठ पर रणभूमियों की ओर उछलते रहना ही सम्राट् का कर्तव्य है ? नूपुरों की रुनझुन सुनते २ ऊब कर निद्राधीन हो जाना ही हमारी दिनचर्य्या है ? मैं पूछता हूँ,

आर्य राक्षस, हम क्या हैं ? हम पूछते हैं...(तेजी से चक्कर काट कर खड़ा रहता है। आचार्य चाणक्य का धीरे २ प्रवेश) हम क्या हैं ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—तुम सम्राट् हो, चन्द्रगुप्त !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—सम्राट् ? नहीं। एक जीवित, आभूषित, प्रतिष्ठित प्रतिमा मात्र। आचार्य, कौमुदी-महोत्सव की आज्ञा हमने दे दी है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—दे दी है ? अनुचित हुआ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—उचित या अनुचित, हमने आज्ञा दे दो है; वह लौट नहीं सकती।

विष्णुगुप्त चाणक्य—वह लौटेगी। पाटलीपुत्र को अभी किसी भी उत्सव की आवश्यकता नहीं।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—क्योंकि आप नहीं चाहते और मैं चाहता हूँ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—विधाता नहीं चाहती।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—विधाता ? (उत्ताल हास्य) आपकी लोहेच्छा के सामने विधाता की इच्छा है किस विसात में ? आचार्य, प्रत्येक स्थिति की सीमा और प्रत्येक बात की हद होती है। चरम सीमा किसी की अच्छी नहीं। कौमुदी महोत्सव होगा।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(हँसकर)—नहीं, चन्द्रगुप्त, नहीं। तुम नहीं जानते; तुम नहीं समझते।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—मैं सब जानता हूँ; और सब समझता हूँ। पकी-पकाई मंत्रणाओं से मुझे दुलराया जाता है; लिखी-लिखाई आज्ञाओं पर मेरे हस्ताक्षर करवाये जाते हैं; जमे-जमाये रण-व्यूहों पर मुझे भेज दिया जाता है; मेरे आसपास चरों ओर मूक ढीठ अंग-रक्षकों और अटल क्षुद्रकों का अटूट घेरा है। मेरी चर्य्या का प्रत्येक पल भाँपा जाता है। मैं कहीं आ नहीं सकता, जा नहीं सकता—इसी को सम्राट् कहते हैं क्या? यदि मैं सचमुच सम्राट् हूँ, तो मैं सम्राट् हूँ, आपका जीवित बन्दी नहीं। हमने कह दिया।

विष्णुगुप्त चाणक्य—मैंने सुन लिया। मेरी भूल थी।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आपकी नहीं; मेरी भूल थी, जो मैं आपकी दया और कृपा के फल-स्वरूप सम्राट् बना।

विष्णुगुप्त चाणक्य—चन्द्रगुप्त ?

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य सम्राट् के समक्ष हैं।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यह, यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—जो बहुत पहले सुन लेना और समझ लेना चाहिये था। प्रधानामात्य, मंत्री-परिषद् की प्रत्येक बैठक के पूर्व हमारी स्वीकृति ली जाय। हमारी इच्छा, विवेक और आज्ञा से ही शासन चलेगा।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यह मेरा अपमान है। मैंने—मैंने—

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य, हम विवश हैं।

विष्णुगुप्त चाणक्य—अच्छा। तब मैं चलता हूँ और

हाथ उठा कर, आशीर्वाद के साथ, जिसे शायद तुम अब नहीं चाहते, चन्द्रगुप्त ! मैं कह जाता हूँ कि तुम को अपना यह साम्राज्य अभीष्ट हो। तुम समझते हो, तुम्हारा यह वैभव, तुम्हारी यह वज्रसत्ता मैं चाहता हूँ ? तुम भूलते हो, चन्द्रगुप्त ! आसमुद्रात् भारत-भूमि और उसकी कीर्ति अब तुम्हारी है। मेरी वह थी नहीं और आज भी नहीं है। एक शान्त ज्योति महर्षि दाण्ड्या-यन ने मेरे इस अन्धकार-पूर्ण हृदय में जगा रक्खी है। सम्राट् ! आपका कल्याण हो; आज आपने मेरे मन के नयन खोल दिये। (धीरे२ प्रस्थान।)

प्रधानामात्य राक्षस—सम्राट् !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य— एक दिन यह होना था। (चक्कर काट कर) आचार्य सदैव नहीं रहते; वह आज हो गया; हम शासन करेंगे। हम इस भारतभूमि को शत्रुओं की छाया से भी विहीन कर देंगे। यवन-क्षत्रप की तलवार हम एक बार और तोड़ देंगे। प्रजा के अभ्युदय के लिये क्या हम प्रेरणावान नहीं ? क्या राज्यदण्ड लिये हुए हमारे ये हाथ क्षमतावान नहीं हैं ? हैं। आर्य शकटार को सूचित कर दें आप निश्चिन्त रहें, आर्य राक्षस ! हम हैं—हम हैं, समझे आप ?

प्रधानामात्य राक्षस— समझ गया, सम्राट् ! जैसी आज्ञा, अभय !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—दिया। अब जायँ। हम विश्राम करेंगे।

प्रधानामात्य राक्षस—जैसी महाराजाधिराज की इच्छा। (अभिवादन करके जाता है।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(चक्कर काट कर)— दिखा दूँगा कि मैं राज्य और रणभूमि का एक साथ दृढ़ और सफल संचालन कर सकता हूँ। सिंहरण को बुला लूँगा। निश्चय ही मैं किसी की भी इच्छा का दास नहीं हो सकता। नहीं। (बैठ कर) आह! थक गया हेलन! कार्नेलिया! तुम मेरी हो— मेरी प्राणोपमे! मैं तुम्हें अपने हृदय और राज्य की राजराजेश्वरी बनाऊँगा। हाँ; अवश्य! कंचुकी! (कंचुकी का प्रवेश और चुपचाप अभिवादन करना) हमें शयनागार का मार्ग दिखा।

कंचुकी—जैसी प्रभु की इच्छा। इधर, प्रभो! इधर।

(आगे २ कंचुकी और पीछे २ सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य का प्रस्थान)

पर्दा गिरता है।

दृश्य—छठा

[पाटलीपुत्र के बाहर एकान्त मार्ग। कुछ नागरिकों का भ्रमण करते हुए प्रवेश।]

१ नागरिक—(रुक कर)—सच तो यह है, सम्राट् ने आचार्य से तोड़ कर उचित नहीं किया। जिस दिन आचार्य गये, उसी दिन सम्राट के प्राण लेने का हेय प्रयत्न किया गया।

यही कारण था, आचार्य कौमुदी-महोत्सव मनाने के पक्ष में न थे। पर सम्राट् को...।

२ नागरिक—चुप रहो जी! कोई आस-पास होगा, तो बधिया बँध जायगी।

३ नागरिक—बँध जाय। सत्य तो कहना ही होगा। सम्राट् को पता लगना चाहिये, कि प्रजा आचार्य का चला जाना ठीक नहीं समझती।

४ नागरिक—तो तुम स्वय जाकर यह क्यों नहीं निवेदित करते? बड़ों की बड़े ही जानें। यह तो संसार की रीति है—अर्थ सिद्ध हुआ नहीं कि पिया जोगी बना नहीं।

५ नागरिक—ठीक कहते हो, भाई! आचार्य न होते तो क्या सम्राट पश्चिमोत्तर आर्यावर्त, और पूर्व से पश्चिम तक के इतने देश जीत कर साम्राज्य का इतने कम समय में विस्तार कर सकते थे? राज्याभिषेक के दूसरे दिन से ही आचार्य ने भारत-साम्राज्य का संगठन प्रारंभ कर दिया था। अन्तरंग और बहिरंग सब प्रकार के शत्रुओं से सावधान रहते हुए आचार्य ने समूचा नया शासन-विधान और प्रणाली भी स्थापित की।

६ नागरिक—क्या नहीं किया आचार्य ने? जनपदों और गणराज्यों को किस सुन्दरता और कुशलता के साथ सम्राट के हाथों में लाकर रख दिया। एक सूत्र में पिरो दिया, सब को। पहले था कुछ? अब प्रत्येक प्रकार का विभाग है; व्यवस्था है। देखें, एक पत्ता भी हिल जाय?

७ नागरिक—इतनी विशाल महान् सुसज्जित सेना क्या आप हमने पहले देखी थी ? सम्राट् का अर्थ सिद्ध हुआ नहीं कि आचार्य को विदा कर दिया। एक व्यंग-काव्य द्वारा कभी अवसर हुआ तो यह बात मैं स्वयं सम्राट् को सुनाऊँगा।

८ नागरिक—अवश्य सुनाना। फिर मोक्ष का भी साक्षात्-कार कर लेना, समझे! अरे ये राजा होते ही निर्मम हैं।

६ नागरिक—कौमुदी-महोत्सव के जुलूस में सम्राट् फबते तो खूब थे, परन्तु जब प्राणों पर आक्रमण हुआ, तो नशा हिरन होगया। समझ में आगया होगा कि आचार्य क्यों कोई पर्व या उत्सव मनाने नहीं देते थे। सम्राट् को निरापद करने में आचार्य ने क्या २ संयोजन किये थे—कभी सुनाऊँगा।

१ नागरिक—तुम्हें कैसे मालूम ?

६ नागरिक—आय शकटार ने स्वयं सम्राट् से सारी बातें षड्यन्त्र खुल जाने के बाद बताईं। सम्राट् का मुख विवर्ण हो उठा।

२ नागरिक—अब पछताने से क्या होता है ? आचार्य हैं कहाँ ?

३ नागरिक—पता नहीं। यह भी एक रहस्य हो गया है। सम्राट् ने आचार्य की खोज करवाने में कुछ उठा नहीं रक्खा पर आचार्य अदृश्य हो गये हैं। कोई कहता है, समाधिस्थ होकर हिमालय में जा बैठे हैं। कोई कहता है, किसी अप्राप्य स्थान में जाकर अर्थ-शास्त्र सम्पूर्ण करने में लगे हैं। कोई

कहता है, पश्चिमोत्तर भारत की ओर चले गये हैं।

४ नागरिक—मेरा मन कहता है, आचार्य वेश बदल कर निश्चय ही पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश की ओर गये हैं।

५ नागरिक—संभव है। क्योंकि यवनों का आक्रमण होने ही वाला है। महा-क्षत्रप सेल्युकस विशाल सेना के साथ यूनान से कभी का निकल चुका है।

६ नागरिक—उसकी सुपुत्री कार्नेलिया साथ है कि नहीं ?

७ नागरिक—चुप रहो। जानते नहीं, महाक्षत्रप की कुमारी हेलन हमारी क्या हो सकती है ?

८ नागरिक—अपनी भावी महादेवी, यही न ?

९ नागरिक—मूर्खो ! कोई क्षुद्रक सुन लेगा, तो तुम्हारी चर्चा को लिख कर कपोत की चंचु में दे देगा और वह फड़फड़ा कर सम्राट् के हाथों में जा बैठेगा। फिर प्राणों की खैर नहीं है।

१ नागरिक—सच कहा। गुप्तचर-विभाग के कपोतों के मारे नींद हराम है। लोग इनको पारसीक प्रेमदूत समझते हैं, परन्तु ये भोले भाले कपोत कितने ही अभागों के लिये मरण-दूत बन गये हैं।

२ नागरिक—अभागों के क्यों ? दुष्टों के क्यों नहीं कहते ? कौमुदी-महोत्सव के दिन के षड्यन्त्र का पता कपोत ने ही तो दिया था। आर्य शकटार के कंधे पर जा बैठा था—तोरण द्वार के पास सवारी आते ही। तभी तो आर्य शकटार ने सवारी का मार्ग यकायक बदल दिया था, और भण्डा-फोड़ हो

गया। राजरंग, रणरंग, और प्रेमरंग की बात विरले ही जानते और विरले ही कर पाते हैं।

३ नागरिक—तुम ठीक कहते हो। राज्याभिषेक के दिन से सम्राट् गुप्त दुरभिसन्धियों से घिरे हुए हैं। कौमुदी-महोत्सव के दिन का आक्रमण दीर्घकालीन प्रयत्नों के बाद किया गया षड्यन्त्र था।

४ नागरिक—परन्तु आर्य शकटार ने किस निर्दयता के साथ दुरभिसन्धियों का पता लगाया और किस हृदय-हीनता द्वारा उनका समूल नाश किया गया। अवश्य, आचार्य का गुप्त मार्ग-दर्शन होना चाहिये।

५ नागरिक—यह तो है ही; आर्य शकटार हैं, तब तक आचार्य की छाया मानकर चलना चाहिये। वे कौन आरहे हैं?

६ नागरिक—सैनिक दीखते हैं।

(कुछ सैनिकों का प्रवेश।)

७ नागरिक—(सैनिकों को रोक कर)—सुनो जी!

१ सैनिक—क्या बात है? जाना है।

७ नागरिक—परन्तु कहाँ? श्मशान की ओर? इधर तो श्मशान है।

२ सैनिक—श्मशान की ओर जाओ तुम, अपनी प्रेयसियों के साथ।

३ सैनिक—हम तो जारहे हैं—पश्चिमोत्तर सीमान्त की ओर। तुम्हारे चचा सेल्युकस की सेनाओं का सफाया करने।

आया समझ में ?

६ नागरिक—आगया। वाहरे! भद्दु मेरे! क्या गरिमा है, श्रीमान की!

१ सैनिक—क्यों न हो? खड्ग के धनी हैं। अधिक चीं-चपड़ की तो यह म्यान से निकल पड़ेगी। (तलवार बताता है।)

६ नागरिक—अरे नहीं, नहीं, प्यारे! ऐसा न करना; अन्यथा हमारी प्रियतमाएँ कहीं आपको श्राप न दे दें।

१ सैनिक—(हँसकर)—ऐसी बात है? अच्छा; तब जाओ, क्षमा किया। तुम्हारी प्रियतमाओं के लिये हम यूनानियों के मुण्डों की मूंछें लेते आयेंगे, बस!

६ नागरिक—निस्संदेह, प्यारे! भूलना मत। और अपने लिये यूनानियों की पारसीक मदिरा की खाली सुराही लाना मत भूलना।

(सब हँसते हैं। नागरिकोंका एक ओर तथा सैनिकों का दूसरी ओर जाना।)

दृश्य—सातवाँ

[सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य का अन्तरंग आवास। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य का विचारमग्न प्रवेश।]

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—यह विजन रात कितनी लम्बी है? स्वप्नों से लदी हुई, स्मृतियों से भरी हुई—यह एकाकी

बीहड़ रात ! हेलन ! (चक्कर काटकर) तुम नहीं तो इस वैभव पूर्ण जगत में और क्या है ? कुछ नहीं—कुछ नहीं ! (बैठकर) तुम मेरे इस संसार की श्री और सुषमा हो, प्रियतमे ! (चुप हो जाता है। दूसरा प्रहर बजता है।) कूच ! सेल्युकस ! तुम समझते हो, मैं कायर हूँ ? कातर हूँ ? आचार्य के चले जाने से मैं निस्सहाय हूँ ? मैं तुम्हारी सेना को काट २ कर सिन्धु में डुबो दूँगा। (उठकर) हे हृदय ! यह क्या कर बैठे ? ज़रा भी न सोचा कि वह शत्रु की पुत्री है—भारत-भूमि के दुश्मन की पुत्री। हेलन ! ओह ! हेलन !! तुम इस दुर्दान्त चतुर यवन की पुत्री ही क्यों हुई ? (बैठता है) विधि ! विधाता ? नहीं; चन्द्र-गुप्त ! शत्रु की क्रूर दृष्टि को अन्धा करदे; उसकी निर्दय तलवार को तोड़कर रख दे। हेलन—नहीं। मैं थमूँगा- कोई है ?

(श्रीनन्दा का प्रवेश।)

श्रीनन्दा —(प्रणाम कर)—आज्ञा, प्रभो !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—किञ्चित कादम्ब, श्रीनन्दे !

श्रीनन्दा— लाई, अभी लाई, महिमन् ! (प्रस्थान।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—स्वयं को भूल जाऊँ तो तुमको भूल सकूँ, हेलन ! मेरी हेलन ! तुम कहाँ हो ? (निसास रखकर) तब क्या रक्त, जाति, धर्म, राष्ट्र सब के परे हृदय का यह वेदना-मय मधुर वाह है ? (श्रीनंदा का कादम्ब लेकर प्रवेश)

श्रीनन्दा— (कादम्ब-पात्र भरती हुई)—प्रभो !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य का पता नहीं लगा—वे

सदा के लिये बिछुड़ गये—मेरी भूल थी, मेरा दोष था, श्रीनन्दे ! (आसवपीकर) आचार्य के चले जाने पर लोग क्या सोचते हैं ?

श्रीनन्दा— (पुनः आसव पात्र भरती हुई)—अभय, सम्राट् ! वे अच्छा नहीं समझते । उन्हें दुःख है, प्रभो ! (आसव-पात्र देती है ।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(आसव-पात्र लेकर)—और क्या मुझे नहीं हैं ? (उठकर) सम्राट् अपना सुख-दुःख किसे बताये ? (कादम्ब पान) मैं अकेला हूँ, सारिके ! मेरा कोई नहीं है । यह जड़, तीक्ष्ण असिधारा, यह मुकुट, यह सिंहासन—और वह भय से भरपूर प्रीति ! और मेरा क्या है ? (बैठता है) जो मेरा है, वह मैं पा नहीं सकता । नहीं, इस जन्म में नहीं ! आचार्य ! क्या मुझे क्षमा नहीं कर सकते थे ?

श्रीनन्दा— प्रभो ! (आसव-पात्र भर कर देने लगती है ।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—अब नहीं (चक्कर काटता है; पुनः रुक कर) आचार्य को मैं खोज निकालूँगा; त्रिभुवन का कोना २ छान मारूँगा—पहले इस यवन सेल्यूकस को समझ लूँ । काँच के खिलौने की तरह उसे, उसकी बर्बर सेनाओं के साथ तोड़ कर रख दूंगा— पीस दूँगा । हेलन ! मुझे क्षमा करना, प्रिये !

श्रीनन्दा— कुछ गाऊँ, प्रभो !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य— (स्वगत सा)— हमारे अश्रुओं की

टापें सुनते ही उन बर्बर और दुर्दान्त यवनों के प्राण सूख जायँगे। सुना तूने ? आचार्य मुझे छोड़ कर चले गये, तो क्या मेरा खड्ग भी मुझे छोड़ गया है ? नहीं (चक्कर काट कर) प्रभात की मुँह-जोही में हम अपने अश्व की पीठ पर होंगे— हमारा उत्तम ध्वज आकाश में लहरा उठेगा— हम वन-केशरी के समान सेल्यूकस पर टूट पड़ेंगे ! हम यह करेंगे—(बैठ कर) सुना, कुछ गा, श्रीनन्दे ! (लेटने की चेष्टा करते हुए) हमारी थकी और सूनी आँखों में संगीत से प्रताड़ित निद्रा भरदे। (लेटता है।)

श्रीनन्दा—जैसी मतिमान प्रभु की इच्छा ! (वीणासन पर बैठ कर तार झंकृत करती है।)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य— (सहसा उठ कर) यह झंकार हमारे जीवन में नहीं, श्रीनन्दे ! (पुनः लेट जाता है।)

श्रीनन्दा—मेरे सम्राट्, मेरे यशस्वी प्रभो ! (गाने लगती है।)

"सरल हृदय में मधुर भार मीठे सपनों का;
मधुर स्वप्न में दावानल है जन्म-जन्म का !
स्वाति बूंद बरसो , सरसो कण्ठ पपीहे का !"
सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—हेलन ! (करवट लेता है।)
श्रीनन्दा—
"तव स्मृति की बड़वा से उबला, वारिधि प्राणों का;
झुलसे फूल मनोरथ के, जल उठा प्रीति का बन्द अटल सा;
सदय मेघ बरसो ! सरसो कुञ्ज हृदय का !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(अर्ध-निद्रा में)—नहीं; तुम नहीं-कार्नेलिया, नहीं इस जन्म में नहीं !

श्रीनन्दा—

"कैसे धीरे २ आकुलमन, व्याकुल आतुर ढीठ नयन !

कूल दूर, स्मृति-लहरों पर से डोल रही है नैया—

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(सहसा उठ बैठ कर — श्रीनन्दा (श्रीनन्दा सहसा गाना बन्द कर देती है ।) हम अभी जायँगे—सवेरे की राह हम नहीं देखेंगे । महाबलाधिकृत को हमारा संदेश दो, हम अभी कूच करेंगे । आर्य शकटार हमारे साथ होंगे—कूल दूर नहीं है; नहीं । हम आचार्य चाणक्य के शिष्य हैं और भारत के सम्राट् हैं—हम कातर नहीं; अस्थिर नहीं; हम पराजित और निराश नहीं ! जाओ, आर्य शकटार को हमारा बुलावा दो । सेना को कहो, सिन्धु और झेलम की ओर अभी कूच करे—हम अपने खड्ग के साथ अपने अश्व की पीठ पर हैं—

श्रीनन्दा—जैसी प्रभु की आज्ञा ! (जाती है)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य ! यवनों की अन्तिम और सदैव के लिये पराजय कर मैं आपके अज्ञात चरण खोज निकालूँगा और उनकी अजय धूल को इस राज-मुकुट पर चढ़ाऊँगा—हाँ, मेरे आचार्य ! (मन ही मन आँखें बन्द कर प्रणाम करता है ।)

पर्दा गिरता है ।

———

दृश्य—आठवाँ

[यवन-शिविर के पास घने जंगल का एक मार्ग। कार्नेलिया और पीछे से अन्तरंगिनी सखी]

कार्नेलिया—चारों ओर चीत्कारें; लाशों के ढेर! लहू लुहान वातावरण में मैं एक विजन प्राणी हूँ। मेरी कौन सुनता है, भला? भारतीय अप्रतिम वीरता से लड़ रहे हैं—ज्वार की तरह उमड़ आया है पश्चिमोत्तर भारत! किन्तु वे कहाँ हैं? (निसास रख कर) न जाने वे कहाँ हैं? (अन्तरंगिनी सखी का प्रवेश।) युद्ध के क्या समाचार हैं?

अन्तरंगिनी सखी—अभय, स्वामिनी! महाशय मेगेस्थनीज़ अभी आकर सूचित कर गये हैं कि युद्ध चरम सीमा तक पहुँच रहा है। वह ब्राह्मण चाणक्य अभी २ रणभूमि में देखा गया है।

कार्नेलिया—पिताजी कुशल तो हैं?

अन्तरंगिनी सखी—प्रत्येक यूनानी वीर प्राणों की बाज़ी लगा कर लड़ रहा है। परम माननीय महा-पात्र सेल्यूकस सैन्य की हरावल में हैं।

कार्नेलिया—अच्छा। पितृदेव! देव-देव! रक्षा करो। (सहसा) तू जा—युद्ध की गति-विधि से मुझे सूचित करती रह। (अन्तरंगिनी सखी जाना चाहती है, उसे रोक कर) भारतीय सम्राट् रणभूमि में देखे गये हैं क्या?

अन्तरंगिनी सखी—अभी पता लगा कर आती हूँ । (प्रस्थान ।)

कार्नेलिया—युद्ध के मिस ही आते । देख तो पाती तुमको—नहीं । अब आप राजेश्वर हैं; सम्राट्! और मैं? भारतभूमि के शत्रु की एक एकाकी कन्या । यूनानियों और भारतीयों के रक्त-कीच में सनी हुई लाशें और प्यासी उग्र तलवारें हम दोनों के बीच में है । (आह) एक अनवरत व्यर्थ स्वप्न के समान यह मेरा जीवन होगया! (चक्कर) मृत्यु! तू मुझे ही भूल बैठी है क्या?

(अन्तरंगिनी सखी का पुनः प्रवेश ।)

कार्नेलिया—क्यों, क्या बात है? युद्र—पिताजी कुशल से तो हैं?

अन्तरंगिनी सखी—परम माननीय सकुशल तो हैं, परन्तु आचार्य चाणक्य ने अपनी सेना को घेर-सा लिया है । युद्ध चरम सीमा तक पहुँच गया है, और अभी २ चरों ने समाचार दिया है कि भारतीय सम्राट् विशाल सैन्य के साथ रणभूमि से कुछ ही दूर पर देखे गये हें ।

कार्नेलिया—अच्छा? तू जा—उनके देखते ही मुझे समाचार दे । समझी? मेरा मुँह क्या देख रही है—जा ।

अन्तरंगिनी सखी—(मुस्कुरा कर)—जैसी स्वामिनी की आज्ञा । (प्रस्थान)

कार्नेलिया—(आतुरतापूर्वक चक्कर काटकर)—वे आरहे हैं—आरहे हैं! कार्नेलिया! हे ईश्वर! मैं क्या करूँ? पिताजी को

कार्नेलिया—पिता ! मेरे प्यारे पिता—(त्वरा से प्रस्थान ।)

अन्तरंगिनी सखी—(चर से)—और युद्ध ?

चर—भारतीय सम्राट् के भयंकर दबाव से घिरा हुआ अपना सैन्य छिन्न-भिन्न होगया। पराजय !

अन्तरंगिनी सखी—पराजय ? हे प्रभो !

(दोनों का त्वरा से प्रस्थान)

(नेपथ्य में—"जय भारतवर्ष ! सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य की जय !" के तुमुल जय-घोष होते हैं ।)

दृश्य—नवाँ

(यवन-शिविर में सेल्युकस का शिविर)

[घायल सेल्युकस पलंग पर । मेगेस्थनीज़; मुख्य सेनापति; पार्षद। पीछे से कार्नेलिया; विष्णुगुप्त चाणक्य; सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य ।]

सेल्युकस—आह ! मेगेस्थनीज़ !

मेगेस्थनीज़—परम माननीय ! धैर्य्य; शान्ति ।

सेल्युकस—बेटी हेलन ! आह ! हम ठीक हैं-सब जाओ; जाओ—हम ठीक हैं; हमें कुछ नहीं हुआ ।

मेगेस्थनीज़—गहरे घाव हैं, श्रीमन् ! शान्त रहिये । चिकित्सक आ ही रहा है ।

सेल्युकस—शान्त ? हाँ; हमें शान्ति चाहिये। चिकित्सक ! क्या करेगा वह ? शरीर के घाव अच्छे हो जायँगे, पर मन के नहीं। भारतीयों ने हमें तब—तब पराजित कर दिया ?

मेगेस्थनीज़—जय-पराजय वीरवरों का खेल है, श्रीमन् !

सेल्युकस—हम नहीं हारे। हम कहते हैं, हम नहीं हारे। आह ! बेटी हेलन् !

(कार्नेलिया का त्वरा से प्रवेश।)

कार्नेलिया—पिता ? मेरे प्यारे वीर पिता ! (सेल्युकस के पास जाकर) हे देव-देव प्रभो ! हे पितृ-देव ! यह क्या होगया ?

सेल्युकस—बेटी मेरी ! (कार्नेलिया सेल्युकस की छाती पर सिर रखती है।) कुछ नहीं। मुझे कुछ नहीं हुआ। कुछ नहीं हुआ। हम शीघ्रही अच्छे हो जायँगे।

कार्नेलिया—कुछ नहीं हुआ ? कितने घाव लगे हैं ? (देखकर) पिताजी ! मैंने नहीं कहा था कि भारतीयों से युद्ध न छेड़िये ? कहा था न ?

सेल्युकस—कहा था। तूने कहा था, हेलन् ! किन्तु ये घाव मुझे खाने थे। (निसास) तेरी बात, तेरी भावना स्वीकार करता, तो यह पराजय पल्ले न पड़ती। हम मृत्यु की पीड़ा सह सकते हैं, परन्तु पराजय की शर्म नहीं।

(चिकित्सक का प्रवेश।)

मेगेस्थनीज़—घावों को सँभालो।

चिकित्सक—(देखकर)—घाव हैं तो कड़े पर इतने गहरे नहीं कि न भरें। देर से ही सही, परन्तु ये घाव भर जायँगे, महाशय! परम माननीय चिराऽयु हों। (घाव सँभाल ने लगता है।)

सेल्युकस— हम मृत्यु चाहते हैं। सुना? भारतीय तलवारों और तीरों के इन घावों से मृत्यु भली!

कार्नेलिया—ऐसा न कहो, मेरे वीर भले पिता! क्या तलवार की पराजय को आत्मा की विजय में बदला नहीं जा सकता?

(सहसा विष्णुगुप्त चाणक्य का प्रवेश।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—क्यों नहीं, पुत्री? तुम चाहो तो यूनान की यह पराजय आत्मा के गौरव में बदली जा सकती है?

कार्नेलिया—(सहसा खड़ी हो जाती है)—आचार्य? महिमन् चाणक्य।

विष्णुगुप्त चाणक्य—कल्याण हो; अखण्ड सौभाग्यवती हो, पुत्री। महाक्षत्रप! बिना रुके मैं यहाँ आया हूँ। तबियत कैसी है?

सेल्युकस—सादर वन्दन स्वीकार कीजिये, महिमन्! अच्छा हूँ। जीवन भर घाव खाता आया हूँ; ये घाव भी भर जायगे। बैठिये। बेटी हेलन्, आचार्य को आसन दो।
(कार्नेलिया चौकी आगे करती है। विष्णुगुप्त चाणक्य बैठता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य—घाव खाना और घाव करना यही वीरों का जीवन-व्यवसाय है, सेल्युकस! बेटी हेलन्? खड़ी

क्यों हो ? (हँसकर) महाक्षत्रप ! भारतीयों और यूनानियों की लाशों के पास से आपकी और हमारी बेटी हेलन् ने मुझे आपके पास ला बिठाया है ।

सेल्युकस—आप ठीक कह रहे हैं, महिमन् ! घावों की इस असह्य वेदना में मेरे मन का हुलास और आशा मेरी पुत्री हेलन् ही है ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—भारत और यूनान की आपस में टकराती हुई तलवारों की चमक के ऊपर क्षितिज पर मैं आपकी पुत्री हेलन् की शान्त और सुन्दर मूर्ति को जैसे तैरते हुए देखता रहा हूँ। महाक्षत्रप ! हेलन् केवल यूनान की पुत्री ही नहीं; वह भारत की बेटी भी है। क्यों ? क्या मैं ठीक नहीं कह रहा ?

सेल्युकस—हेलन् शरीर से मेरी पुत्री है; आत्मा से वह आपकी कन्या है, महिमन् ! आपने मेरे मन की बात कही। युद्ध के इस रक्त-रंजित व्यवसाय से यह मुझे सदैव मोड़ने की कोशिश करती रही है, ब्रह्मन्। हेलन् शरीर से यूनानी है, आचार्य ! परन्तु मन से भारतीय होगई है।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यह मैं जानता हूँ, महाक्षत्रप ! यह मैं जानता हूँ। तभी तो जय और पराजय को रणभूमि में ही छोड़कर मैं आपके पास बिना बुलाये आगया हूँ। सेल्युकस ! हेलन् के वीर पिता ! आपके विरुद्ध तलवार उठाने में हमारे वीर सम्राट् को बड़ा क्लेश हुआ। कई दिनों तक तो वे रण-

भूमि में जानबूझ कर नहीं पधारे। यह मैं जानता हूँ, कर्त्तव्य उनको अन्त में घसीट लाया। सेल्युकस! आप और मैं यह जानते हैं, चाहे हम लड़े हों; भारत और यूनान की सेनाएँ और तलवारें लड़ी हों; परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य्य और हेलन् कभी नहीं लड़े और न लड़ सकते हैं—क्यों? जानते हो, महाक्षत्रप?

सेल्युकस—आचार्य! कहे जाओ; मैं अपने घावों की वेदना जैसे भूल रहा हूँ।

विष्णुगुप्त चाणक्य—(उठकर और चक्कर काटकर)—यह आपकी तलवार और हमारे खड्ग कैसे जान सकते हैं? सेल्युकस! हमारी तलवारों को डुबो देती हुई इन दोनों के नयनों की मौन प्रेम-ज्योति यूनान और भारत के क्षितिज को प्रकाशित करती रही है—इनके हृदयों की प्रीति-धारा भारत और यूनान की धरती को हरा-भरा करती रही है। अब मैं थक गया, हूँ महाक्षत्रप! इस उदास जीवन का सारा आतप एक अन्तिम कार्य कर मिटा देना चाहता हूँ– यूनान और भारत को अखण्ड रक्त-मैत्री! हेलन को भारत की महादेवी बनाकर—यही अब मेरे जीवन की एकान्त कामना है। मेरी सुनोगे?

सेल्युकस—आचार्य! आप सचमुच महर्षि हैं, महान् हैं। लाशों से पटी हुई और राग-द्वेष से जलती हुई रणभूमियों में घूमते हुए भी आप हृदय का मौन प्रेम-संगीत सुन सकते हैं! कार्नेलिया आपकी आत्म-कन्या है। घायल और पराजित मैं उसका शरीर-पिता इन्कार कर ही कैसे सकता हूँ। और अब करूँ क्यों?

विष्णुगुप्त चाणक्य--रणभूमि की पराजय को यूनान की प्रेम-विजय में मैं बदल देना चाहता हूँ, सेल्युकस !

अनुचर का त्वरा से प्रवेश)

अनुचर—अभय, परममाननीय ! सम्राट—भारतीय सम्राट् देव ! द्वार पर खड़े है—

सेल्युकस—आदर के साथ उनका मार्ग अबाध करो। बेटी तुम स्वयं जाकर उनको लिवा लाओ।

कार्नेलिया--(लजाती हुई)-- जैसी पिता-श्री की इच्छा (प्रस्थान)।

विष्णुगुप्त चाणक्य—विजयी सम्राट् आपके द्वार पर स्वयं खिँच कर आ गया है ? क्या यह आपकी सच्ची कि जय नहीं है ? सेल्युकस ! मित्र ! मैंने अनुभव कर लिया है जय के उन्मादित हर्ष और पराजय के विषादपूर्ण क्लेश से नहीं, हृदय के घुटते हुए प्रेम के मिलन-स्वप्नों और विरह की कातर स्मृतियों से ही जातियाँ एक होती हैं, और उनमें शाश्वत अभ्युदय प्रकट होता है--

(कार्नेलिया के साथ सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य, सिंहरण, रजनीगन्धा; महामात्य राक्षस एवं अंग-रक्षक पार्षद-गण)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य-- (सहसा विष्णुगुप्त चाणक्य को देखकर)--कौन, आचार्य ? यहाँ ? मेरे आचार्य ! (चरणों में गिर पड़ता है) मुझे क्षमा करो; क्षमा ! आचार्य, मैं सम्राट पीछे हूँ; पहले आपका पुत्र हूँ, शिष्य हूँ, -अनुचर हूँ। (चरण पकड़ लेता है।)

विष्णुगुप्त चाणक्य-- (चन्द्रगुप्त मौर्य्य को उठाते हुए)--उठो, मेरे अभिजात सम्राट्! उठो! अपना विवर्ण, किन्तु तेजस्वी गौरवमय मुख-मण्डल मुझे देख लेने दो।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य-- (उठता हुआ)--मैं आपका अपराधी हूँ; मुझे दण्ड दो; आचार्य! किन्तु-किन्तु...

विष्णुगुप्त चाणक्य--(बीच ही में)-मेरी भारत भूमि के वीर सम्राट्! शान्त हो जाओ; और अपने आचार्य को अन्तिम बार अपना दर्शन कर लेने दो। जी भर कर मुझे देख लेने दो अपने को, चन्द्रगुप्त! चिरञ्जीवी होओ, मेरे भारत-सम्राट्! (गद्गद् कण्ठ से) न्याय और धर्मपूर्वक यशोमति भारत-भूमि का प्रतिपल कल्याण करते रहो। सेल्युकस! बन्धुवर! देर न करो; यूनान और भारत की आत्माओं को एक करदो और मुझे विदा दो-- सम्राट्! वीर महाक्षत्रप ने अपनी पुत्री हेलन का पाणि आपके दृढ़ हाथों में देना स्वीकार कर लिया है। इन्हें सम्बोधित करो, चन्द्रगुप्त!

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य-(सेल्युकस से)-वीर महाक्षत्रप देव!

सेल्युकस--देव! यह मैं क्या सुन रहा हूँ? धन्य! सम्राट्। नहीं, नहीं, वीरवर चन्द्रगुप्त मौर्य्य, धन्य! (उठ बैठता है) कौन कहता है, मैं पराजित हुआ हूँ। जाओ, यूनान की शहनाइयों से कहो, भारत और यूनान की एक साथ जय हुई है।जाओ--(मेगेस्थनीज़ इशारा करता है, यूनानी पार्षदों का त्वरा से प्रस्थान) आचार्य, आप ही कार्नेलिया का हाथ चन्द्रगुप्त के हाथ में दीजिये।

कार्नेलिया— (हठात्) पिता !

सेल्युकस— (मुस्कुराकर) पुत्री ! संकोच न कर। मेरी इच्छा है कि तू अपने आराध्य प्रिय को सदैव के लिये प्राप्त कर।

कार्नेलिया—(सहसा सेल्युकस के कण्ठ से लगकर)–पिता, मेरे देवस्वरूप पिता ! यह ऋण मैं कैसे चुकाऊँगी ?

सेल्युकस—(आँखों में आँसू)—नहीं, हेलन्, तू भूलती है। हम सब पर यह तेरा ऋण है। यूनान और भारत तेरा यह ऋण कैसे चुकायँगे ? चन्द्रगुप्त ! पुत्र ! अपने हृदय की देवी का स्वागत करो—आगे बढ़ो।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—आचार्य ?

विष्णुगुप्त चाणक्य—(स्वीकृति सूचक सिर हिलाकर)–जातियों और सिंहासनों के कल्याण के लिये ही नहीं, भारत और यूनान के लिये ही नहीं, अपनी आत्मा के सुख के लिये आगे बढ़ो, वत्स चन्द्रगुप्त !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—(आगे बढ़कर) हेलन ! महादेवी (लज्जा से संकुचित हेलन का हाथ पकड़ कर रजनीगन्धा से) भद्रे ! तुम्हारी भाभी और भारत की महादेवी को तुम्हें सौंपता हूँ। (घूमकर सेल्युकस से) वीर महापात्र पिताश्री ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

सेल्युकस—पिताश्री ! इस एक शब्द ने मेरी सारी वेदना हर ली ! जिओ, चन्द्रगुप्त ! यूनान के पितृदेवता तुम्हारा

और हेलन् का सदैव मंगल करें। यूनान के झण्डे फहरा दो! रणभूमि में सोये और घायल कराहते हुए यूनानी सैनिकों से कहो, कार्नेलिया ने भारत-सम्राट् को सदैव के लिये जीत लिया है! (नेपथ्य में--'यूनान की जय'! 'भारतवर्ष की जय' के घोष होते हैं। दुन्दुभि और शहनाई बजती हैं।)

रजनीगन्धा—(कार्नेलिया को अपने पार्श्व में लेकर)—मेरी भली और सुन्दर महादेवी! भाभी! मेरे सम्राट्-भैया को कितना तड़पाया है तुमने?

(भारतीय और यूनानी सैनिकों की भीड़ अन्दर घँस आती है।)

भारतीय सैनिक—सम्राज्ञी महादेवी हेलन् की जय!

यूनानी सैनिक—सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य की जय!!

सेल्युकस—मैं कहता हूँ, आचार्य चाणक्य की जय!

यूनानी-भारतीय सैनिक—जय!

विष्णुगुप्त चाणक्य—जय! सर्वत्र सर्व दिशाओं में सदैव के लिये मंगलमय जय! वीर सेल्युकस, महादेवी हेलन, सम्राट् और वत्स चन्द्रगुप्त! पाटलीपुत्र के राजमन्दिर की सीढ़ियों से उतर कर मैं इसी धन्य दिवस को अपनी आँखों से देखने के लिये जी रहा था। मेरे आसक्त नयन मर्माहत होकर उस दिन खुल गये; परन्तु भारत और यूनान की अखण्ड मैत्री की कामना में मेरा मन अटका हुआ था। परमेश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हुई। अब मुझे विदा दीजिये—(सबको हाथ जोड़ कर) यह आप सबका आचार्य कठोर रहा है। किसी को भी बुरा

लगा हो, चोट पहुँची हो, तो इस तुच्छ नाशवान आचार्य को आज इस मंगलवेला में उदार होकर क्षमा कर दीजिये।

सिंहरण—यह आप क्या कह रहे हैं, आचार्य ? हम सब आपको पाटलीपुत्र ले जायँगे, आचार्य !

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य—हम सब आपके शिष्य, पुत्र-पुत्रियाँ, सैनिक, प्रजाजन, राज्य-मंत्री—सब, आचार्य ! आपको पाटलीपुत्र ले जायँगे—अवश्य, आचार्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—नहीं, वत्स चन्द्रगुप्त ! पाटलीपुत्र की ओर अब मुझे कोई नहीं ले जा सकता। (चक्कर काटकर) जय-जयकार, सैनिक-अभिवादन, व्यूह और व्यवस्था, प्रपंच और प्रतारणा, विजय और वैभव (सिर हिलाकर) कोई भी मुझे नहीं ले जा सकता। अर्थशास्त्र और कामशास्त्र के रूप में मैं उनके साथ कभी का चला गया था। सिंहरण ! वत्स ! मुझे महर्षि दाण्ड्यायन का इंगित बुला रहा है—अपनी आत्मा के साथ दुरभिसन्धि कब तक करता रहूँ ? ब्राह्मण सिद्धि और विजय के बाद राजमन्दिर की ओर नहीं, सघन और मौन आश्रम की ओर ही जाता है।

रजनीगन्धा—किन्तु आचार्य, पूज्य !

विष्णुगुप्त चाणक्य—शान्त हो जाओ बेटी ! प्रतारणा, प्रपंच, आशंका, आशा और निराशा, विधि—विधि की कठ पुतली बन कर बहुत जिया; मान और अपमान, राग और द्वेष, सफलता और असफलता, जीवन के इस निर्मम व्यापार

को मैंने बहुत किया। भारतभूमि और तुम लोगों के लिये मैं अब तक इस मन्थर चमत्कृत अन्धकार में पड़ा रहा। किन्तु अब नहीं। मुझे प्रकाश चाहिये, मुझे शान्ति चाहिये—मुझे विदा दो!

महामात्य राक्षस—आपके मार्गदर्शन के बिना भारत-साम्राज्य और हम सबका क्या होगा, आर्य? इस विशाल साम्राज्य को हम आपके बिना एक पल भी कैसे चलायँगे?

विष्णुगुप्त चाणक्य—इसीलिये तो मैं अबतक आप लोगों के पास आता रहा; सब के पास जाता रहा। सुख और दुःख समान कर मैं भारत-प्रजा और उसकी शक्ति-श्रीवृद्धि की दृढ़ व्यवस्था में लगा रहा। अब सभी रणभूमियाँ ठण्डी हो चुकी हैं। सब कुछ सिद्ध हो चुका है और स्थिर हो चुका है। फिर भी (मुस्कुराकर) जब आप सबको अपने आचार्य की सलाह की आवश्यकता हो, तो चले आना। शक्ति, संगठन, श्रीवृद्धि, सुख, कल्याण और निरंतर अभ्युदय को आत्म-निर्भर होना ही चाहिये। अच्छा तो मैं चला। महर्षि मेरी राह देखते हुए आश्रम के द्वार पर न जाने कब से खड़े होंगे? हे परमेश्वर! सबको सुखी कर; प्राणीमात्र का मंगल कर—सबको सद्‌बुद्धि, सद्‌गति दे। (प्रस्थानोद्यत)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य—आचार्य!

महादेवी हेलन् पूज्य! हे श्रद्धेय, रुको—रुको, आचार्य!

रजनीगन्धा—हम आपके पुत्र-पुत्री, शिष्य, सैनिक, सेवक आपका यह वियोग कैसे सहेंगे ? आर्य-पुत्र ! आचार्य जा रहे हैं—(रोती है।)

सिंहरण—(रोताहुआ)—अन्धकार हो जायगा, आचार्य ! मत जाइये।

विष्णुगुप्त चाणक्य—नहीं, सिंहरण ! नहीं । भारत सदियों तक अब प्रकाश के पथ पर रहेगा। अपने आत्म-विश्वास और अजय शक्ति में भरोसा रक्खो। सम्राट् ! मैं अपनी आत्मा के विरह को अब नहीं सह सकता। नहीं, मुझे रोको मत। निर्भय हो जाओ और मुझे जाने दो ! मेरे मन के लड़खड़ाते हुए पैरों को आत्म-लाभ के मुक्ति-मार्ग पर चलने दो, मेरे बच्चो ! (धीरे २ प्रस्थान। सब प्रणाम में सिर झुकाकर खड़े रहते हैं।)

: यवनिका :